वर्ष ८, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

ज्येष्ठ पूर्णिमा १९९१

हरि

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		
२.	श्रीराम चरित मानस की कथा किस कल्प की [ले० श्रीमहावीर प्रसाद जी ...		२५७
३.	भक्ति भाव (ले० श्री गोपाल प्रसाद जी शर्मा		२५८
४.	अयोध्या काण्ड में क्षेपक [ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०		२६१
५.	आओ आओ (कविता) [ले० श्री भागवत प्रसाद सिंह		२६३
६.	पुराणगाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		२६५
७.	श्री भगवच्चर्चा [ले० श्री भोले बाबा जी		२६६
८.	दर्शन परिचय [ले० श्री पं० किशनारायण जी		२७०
९.	दीन बन्धु (कविता) [ले० श्री बाबू बाल मुकुंद		२७२
१०.	हरि नाम सुमरन [ले० श्री महात्मा राम		२७५
११.	वैदिक और पौराणिक धर्म गाथायें [ले० श्रीस्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती		२७८
१२.	मनो भावना (कविता) [ले० श्री दिनेश		२८२
१३.	तप [ले० श्री पं० पारसनाथ परमार्थी		२८२
१४.	आग्रह (कविता) [ले० श्री कविवर शिवलहरी जी		२८४
१५.	सदुपदेश [ले० श्री राम सेवक सिंह जी		२८५
१६.	मोह का त्याग [ले० श्री लोकनाथ जी		२८६
१७.	भजन		२८८

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) वा इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चरखी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरी प्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चरखीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निदालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कौंसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

पुष्पकारूढ राम

बीती अवधि अपार, अति उतसुक पुरजन सकल।
आवत अवध-अधार, चढ़ि पुष्पक दलबलसहित॥

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, ज्येष्ठ पूर्णिमा, जून १९३४ | अंक ६ पूर्ण संख्या ९२

वेदोपदेश

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥

इन्द्र और अग्नि तुम लोगों के जिस अतीव विचित्र रथ ने सारे भुवन को उज्वल किया है उसी रथ पर एक साथ बैठ कर आओ अभिषुत सोम पान करो ॥ १ ॥

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ २॥

यज्ञपात्र इन्द्र और अग्नि यदि अपने घर में प्रसन्न होकर रहते हो, यदि पूजक वा राजा के प्रति तुष्ट होकर रहते हो तो हे अभीष्ट दातृद्वय इन सारे स्थानों में आकर अभिषुत सोम पान करो ॥

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ३ ॥

इन्द्राग्नी यदि तुम लोग पृथिवी, अन्तरिक्ष या आकाश में रहते हो तो हे अभीष्ट दातृद्वय उन सारे स्थानों से आकर अभिषुत सोमपान करो ॥ ३ ॥

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ४ ॥

इन्द्र और अग्नि सूर्य के उदित होने पर दीप्तिमान अन्तरिक्ष में यदि तुम लोग अपने तेज से हृष्ट होते हो तो हे अभीष्ट दातृद्वय उन सारे स्थानों में आकर अभिषुत सोमपान करो ॥ ४ ॥

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।
तन्नो मित्रो वरुणो ममहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

इन्द्र और अग्नि इस तरह अभिषुत सोमपान करके हमें समस्त धन दान दो। मित्र, वरुण, अदिति सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे इस प्रार्थित धनकी पूजा करें ॥ ५ ॥

(ऋ० म० १, अ० ७, सू० १०८, मं० १, ७, ६, ११, १२)

श्रीराम चरित मानस की कथा किस कल्प की ?

गतांक से आगे

[ले० श्री महावीर प्रसाद जी 'बजरंगबली' बी० वास्तव]

नारद मोह के प्रसंग में भी हरगणों के शाप का वर्णन प्रसिद्ध सर्व साधारण गत अवतार हेतु को व्यक्त करने के लिये बहुत आवश्यक था। क्योंकि उस कल्प के प्रसंग में भी नारद जी का भगवान् को शाप, भक्त भगवान् के बीच का मार्मिक तथा व्यक्तिगत प्रसंग था।

अब प्रथम तीन कल्पों के प्रसंग क्रमशः उपक्रम व उपसंहार पूर्वक स्पष्ट रूप से बिलकुल पृथक् कर दिये गये हैं यह प्रथम ही उस प्रसंग की चौपाइयों को उद्धृत करके दिखाया जो चुका है। पर चौथे कल्प के प्रसंग में प्रारंभ करने के साथ ही इस अवतार के चरित्र को विस्तार पूर्वक कहने की सूचना देते हुये इस अवतार के हेतुओं के वर्णन में प्रथम मनु शतरूपा की कथा कह कर फिर उसी अवतार का दूसरा हेतु वर्णन करना प्रारम्भ किया—यथा

यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा यह हेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जन्म कर हेतु ॥

इस प्रकार आगे भानु प्रताप की कथा प्रारंभ कर ब्राह्मणों के द्वारा उनको शाप होने का प्रसंग विस्तार पूर्वक वर्णन किया।

अब ध्यान देने की बात है कि जैसे आप

कल्पों के प्रसंगों में उपक्रम और उपसंहार बिलकुल स्पष्ट है। उस प्रकार यहां पर कोई उपसंहार न दे कर शाप के प्रसंग के साथ ही साथ उनके रावण हो कर अधर्म विस्तार करने की कथा प्रारंभ कर देते हैं—यथा—

काल पाइ मुनि सुनु सोई राजा।
भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दण्डा।
रावण नाम बीर बरिबण्डा॥

इस प्रकार विप्रशाप से भानु के रावण हो कर पृथ्वी पर अधर्म और पाप फैलाने का विस्तृत वर्णन कर उस अधर्म और पाप से पीड़ित हो पृथ्वी का देवताओं के पास जाना, ब्रह्मा जी की स्तुति तथा आकाश वाणी का प्रसंग कह कर 'यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब तो सुनहु जो बोलहिं गौरी॥ से मनु शत रूपा के अयोध्या पुरी में दशरथ कौशल्या होने की सूचना देते हुये निम्नलिखित चौपाइयों से अवतार चरित्र की प्रस्तावना बांध कर चरित्र का प्रारंभ करते हैं—यथा

अवध पुरी रघुकुल मनि राऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं॥
धर्म धुरंधर गुन निधि ज्ञानी।
हृदय भक्ति मति सारंग पाणी॥ इत्यादि

इस प्रकार रघुनाथ जी के जन्म विवाह से ले कर सात काँडों में प्रभु का चरित्र वर्णन करते हुये उत्तर कांड में काग भुशुंडि गरुड़ संवाद का प्रसंग उठाने से पूर्व निम्न लिखित चौपा में कथा का उपसंहार दिया है:—यथा

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा।
मैं सब कही मोरि मति यथा॥

यही अवतार हेतु प्रकरण में 'अपर हेतु सुनु शैल कुमारी' से उठाये हुये चतुर्थ कल्प के प्रसंग का उपसंहार है।

अब विचार करने की बात है कि जब अवतार हेतु प्रकरण में तीन कल्प के प्रसंगों का अलग२ उपक्रम व उपसंहार देकर प्रथम ही पृथक् कर देते हैं। और चौथे कल्प का प्रसंग उठाकर प्रथम उस अवतार के मनुशत रूपा का वरदान तथा भानु प्रताप का रावण हो कर पृथ्वी पर अधर्म व पाप का विस्तार करना दो मुख्य हेतु कह कर उसी सिलसिले में उस पाप व अत्याचार से पीड़ित देवताओं की प्रार्थना व आकाश वाणी का प्रसंग कह कर चरित्र का प्रारंभ करते हैं तब मानस रामायण की इस प्रधान कथा में दूसरे कल्पों की कथाओं की मिलावट मानने की गुंजाइश ही कहां रहती है।

अब जिन प्रसंगों से संभ्रम में पड़ जाने के कारण कतिपय वक्ताओं व टीकाकारों को चार कल्प के अवतारों की कथाओं का एक ही में मिश्रित होना स्वीकार करके संतोष करना पड़ता है उन प्रसंगों में सब से मुख्य आकाशवाणी का प्रसंग है, जो भक्ति के पिछले माघ व फाल्गुन के दो अंकों में विस्तार पूर्वक निकल चुका है। जिसमें उस प्रसंग से उत्पन्न होने वाले भ्रमों का विस्तृत रूप से समझा कर निवारण किया गया है। दूसरे आरण्य कांड की निम्नलिखित चौपाई से भी भ्रम हो जाता है:—

मोर शाप करि अंगीकारा, सहत राम नाना दुख भारा॥

पर इसका समाधान भी उन्हीं पिछले अंकों में छपे हुये आकाश वाणी प्रसंग के अन्तर्गत 'नारद शाप सत्य सब करिहौं' के साथ ही हो जाता है। यद्यपि नारद जी की शाप के कारण स्वतन्त्र रूप से एक कल्प में अवतार हो चुका है पर नारद जी ने जो शाप भगवान को दिया है वह चरित्र प्रत्येक

रामावतार में होता है। मानों भक्त वत्सल भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारद जी के वचन को परंपरा रूप से स्थान दे कर प्रत्येक रामावतार में उन वचनों को सत्य करना निश्चय कर लिया है। इसीसे मनुशत रूपा के वरदान से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे कल्प के अवतार में भी सीता हरण, व बन्दरों की सेना आदि की सूचना के लिये आकाश वाणी में नारद शाप का ही देवताओं को स्मरण दिलाते हैं। अब जैसे भक्त वत्सल भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारद जी के वचनों को प्रत्येक रामावतार में ही सत्य करने की एक परम्परा सी कर ली है। चाहे उन्हीं बातों के लिये कोई दूसरे कारण भी आकर सम्मिलित हो जायँ। उसी प्रकार यद्यपि नारद जी के शाप के कारण एक स्वतन्त्र रूप से एक कल्प में अवतार हो चुका है। पर तो भी रामावतार चरित्र में जब २ नारद जी भगवान् को सीता जी की विरह में व्याकुल बन में घूमते हुये देखते हैं। तब २ नारद जी को तो अपना कठोर शाप ही स्मरण हो आता है। (चाहे उस अवतार में उन्हीं चरित्रों के लिये कोई दूसरे ही नवीन कारण मुख्य हों) और तब नारद जी के मुख से यही निकलता है 'मोर शाप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा' यह परस्पर घनिष्ट प्रेम की व्यवस्था है।

इस तरह से उपरोक्त चौपाई के सम्बन्ध में भी सन्देह का निराकरण हो जाता है और इस एक चौपाई के कारण दूसरे कल्प का चरित सम्मिलित होना मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

३-जन्म समय कौशल्या जी के सामने प्रकट होने के अवसर पर जो छन्द आता है उसमें उस अवसर पर भगवान् के रूप के वर्णन में 'निज आयुध भुज चारी' आता है। इन शब्दों से सर्व साधारण में शंख चक्र गदा पद्म धारी चतुर्भुज विष्णु रूप का ही अर्थ लिया जाता है। इससे उन लोगों को सन्देह हो जाता है कि जब इस अवतार में दशरथ कौशल्या-मनुशत रूपा हुये हैं। और मनुशत रूपा जी के सामने भगवान् धनुष धर द्विभुज रूप से प्रकट हुये थे और उसी रूप से इन्हें वर दान दिया था तब जन्म के समय उसी वरदान का स्मरण दिलाने के लिये दूसरे रूप से क्यों प्रकट होंगे। इससे आशय यह चरित्र दूसरे कल्प का मिला हुआ है, जिसमें कश्यप अदिति दशरथ कौशल्या हुये हैं। परन्तु जब अवतार हेतु प्रकरण से यह बात स्पष्ट है कि श्रीराम चरित मानस में कथित राम चरित मनुशत रूपा के वरदान से अवतीर्ण होने वाले कल्प का है। तो उसमें दूसरे कल्प का चरित्र सम्मिलित मान कर सन्तोष कर लेना उचित नहीं। प्रत्युत सन्देहों के निराकरण करने का प्रयत्न ही उचित है। उपरोक्त 'निज आयुध भुजचारी' का अर्थ 'निज आयुध' अर्थात् धनुष बाण-भुज चारी अर्थात् भुजाओं पर फिरता हुआ या पुनः' इस प्रकार 'निज आयुध भुज चारी' का अर्थ द्विभुज धनुष धर भी कई टीका कारों ने किया है। इस अर्थ से शंका उठाने का अवसर ही नहीं रहता। और प्रसंग पर विचार करने पर यह अर्थ प्रसंग के अनुकूल ग्राह्य भी प्रतीत होता है। इस विषय पर दूसरे लेख में विस्तृत रूप से विचार किया जायगा। पर इस विषय में विशेष ध्यान न जाने पर यदि चतुर्भुज रूप का सर्वसाधारण में प्रसिद्ध अर्थ ही ठीक माना जाय तो मनुशत रूपा के दशरथ कौशल्या होने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि मनुशत रूपा को चतुर्भुज विष्णु रूप से कोई द्वेष नहीं था। तप के प्रसंग में विधि हरि हर

के बार २ सन्मुख आने व बहुत प्रकार लोभ दिखाने पर भी मनु शत रूपा के उन से वरदान न माँगने का कारण कुछ और ही था। जो किसी समय अवसर मिलने पर उस प्रसंग के वर्णन में लिखा जा सकता है। विस्तार भय से इस लेख में उस प्रसंग को नहीं उठाया जाता उसका कारण यह नहीं था कि चतुर्भुज विष्णु रूप से उनको कोई द्वेष था। या कि चतुर्भुज विष्णु भगवान् को ये ईश्वर ही नहीं मानते थे। अतएव जन्म समय शंख चक्र गदा पद्म धारी चतुर्भुज रूप से ही प्रकट हो कर भगवान् ने कौशल्या जी को अपने ईश्वर होने का परिचय दिया। और साथ ही उनके पूर्व वरदान की कथा का भी स्मरण दिलाया तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि यह भगवान् का ऐश्वर्य्य प्रधान रूप से वर्णन देते हैं। इससे उनकी प्रधान उपासना में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इस प्रकार "तब आयुध भुज चारी" से भी दूसरे कल्प की कथाओं के सम्मिलित होने की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

४—अनेक स्थलों में भगवान् श्रीराम के लिये त्रिदेव गत विष्णु सूचक वाक्य आये हैं। इस से भी लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। पर त्रिदेव गत विष्णु भगवान् श्रीराम के अभेदांश ही हैं। स्वरूपतः उन का भगवान् श्रीराम से कोई भेद नहीं है। इस विषय में भक्ति के पिछले अंक में 'त्रिदेवगत विष्णु और भगवान् श्रीराम' शीर्षक लेख छप चुका है। अतएव प्रसंगानुसार भगवान् श्रीराम के लिये त्रिदेव गत विष्णु के साथ ऐक्य सूचक वाक्यों को देख कर भी कई कल्पों की कथा मिश्रित होने की कल्पना करना आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार सन्देह जनक प्रसंगों पर गंभीर दृष्टि से विचार करने पर सन्देहों का निराकरण हो कर यह बात निर्विवाद रूप से निश्चय हो जाती है कि श्रीराम चरित मानस में उस अवतार की ही शुद्ध क्रम बद्ध कथा है। जिसमें सतीजी को मोह हुआ था। और मनुशत रूपा को वरदान, व भानुप्रताप का रावण हो कर पृथ्वी पर अधर्म का विस्तार करना, उस अवतार के मुख्य हेतु हैं। इसमें क्रम बद्ध कथा में बीच २ तोड़ फोड़ करके, (वह भी अनिश्चित रूप से) अन्य कल्पों की कथाओं की मिलावट कल्पना करना ठीक नहीं प्रतीत होता।

भक्ति-भाव

(लेखक श्री गोपाल प्रसाद जी शर्मा)

पूज्य नाभा जी कहते हैं:—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वंदन किये, नासत विघ्न अनेक॥

यह सिद्धांत अटल है कोई भी आस्तिक इसमें शंका नहीं कर सकता। इस दोहे की टीका विशद है हम केवल भक्ति शब्द पर ही इस समय कुछ कहेंगे।

भक्ति-भक्त-भगवंत-गुरु जब एक हैं तो भगवान् के अनादि होने से ये तीनों भी अनादि हैं। जीव जब संसार में आया तो गर्भ से निकलते ही

उसे मात्र भक्ति उदय हुई क्योंकि यदि वह न रोता तो जीवन धारण ही कठिन हो जाता भक्ति बस हो माताने रोते को उठाया हृदय से लगाया अमृत पान कराया। अहा! क्याही अच्छा होता यदि हमारी वह वृत्ति बनी रहती। हम सब ओर अशक्त हो कर रो देते और परम पिता दया करके हमें हृदय से लगा प्रेमामृत पान कराते पर नट-नागर को लीला करनी थी। मन बुद्धि चित्त अहंकार का तमाशा देखना था। कुछ भूले, कुछ भटके, कुछ ने सदुपयोग किया। वेदों में अग्नि वरुण सविता आदि की उपासना हुई। ब्राह्मणभागने कर्मकांड ही प्रधान माना पर उपनिषद् न रह सके उनने ज्ञान प्राप्त कर भक्ति की ही दुहाई दी। स्मृतिकार सामाजिक व्यवहार के ही लिये तत्पर हुए पर वे भी भक्ति को न छोड़ सके क्योंकि भक्ति बिना समाज शृंखला चलनी कठिन थी। पुराणकाल तो भक्तिमय था ही। यह उनके पृष्ट २ में लिखा हुआ है। अब आया रूढ़ी काल। यवन आये भक्ति तो उनमें भी थी पर एक हाथ में तलवार थी सो भारत ने उन्हें अपने भक्ति रंग में रंगा और भक्त के मुंह से कहवा दिया।

॥ छप्पै ॥

अलीखान पठान सुता सह सूत रखवारे ॥
शेख नबी रसखान मीर महमद हरि प्यारे ॥
निरमलदास कबीर, ताजखां बेगम बारी ॥
तानसेन कृष्णदास, बिजापुर नृपति दुलारी ॥
पिरजादो बोधी रासो, पद रजनित सिर धारिये ॥
इन मुसलमान हरि जनन पै, कोटन हिन्दू वारिये ।

यह सब प्रताप था महानुभाव शंकराचार्य्य रामानुज, मध्व, विष्णु स्वामी, निम्बार्क, श्रीहिताचार्य्य और रामानन्द का।

लीजिये अब आया खिष्ट धर्म्म। कहिये सब गल गई विश्व शक्ति का व्यौहार बनाना, रक्षा, करना तोड़ना और फिर बनाना इसे भारत भूल गया इसीसे ब्रह्मा विष्णु रुद्र अप्रसन्न हुए। राजा राममोहन राय ने ब्राह्म धर्म चलाया उसकी दो शाखा हुई आदि और नव। पर हिन्दूपन छोड़ते हुए भी वे भक्ति को न छोड़ सके। इधर कछु आप्रती हुई आर्य्य समाज भी घास पार्टी मांस पार्टी जाति पांति तोड़क मंडल आदि बना कर भी भक्ति को अपनाये हुए है। सारांश इन सब के सिवाय प्रार्थना समाज आदि सब ही आज कल के समाज भक्ति को अपनाये हुए हैं यही है भक्ति का इतिहास

अब रहा भाव! सो बाजार में जब वस्तुओं का भाव चढ़ता उतरता रहता है तो भक्ति के भाव में भी क्यों न अन्तर होगा। यहीं पर मतान्तर हो जाता है। अज्ञानी लोग लड़ने लगते हैं कहते हैं "ऐसा हो नहीं सकता" सब परमात्मा को सर्व शक्तिमान् मानते हैं। दयालु, दीनबन्धु, अशरण शरण, भक्त वत्सल मानते हैं और भाव की जगह कहने लगते हैं—"ऐसा हो नहीं सक्ता।"

अरे बाबा! सुनो! नगर में रहते थे दो महात्मा एक भजन पूजन करते थे। एक जंगल में अर्द्ध विक्षिप्त गाली दिया करते थे, एक जिज्ञासुने परीक्षा करनी चाही, पहले के पास गया कहा। महाराज पोथी पत्रा की बात नहीं है बात यह है कि मैंने आँखों देखा एक सुई के छेद में से हाथी निकल गया। वे कहने लगे बड़ा गप्पी है ऐसा कहीं हो सक्ता है। अब जिज्ञासु पागल के पास गये। उनसे भी वही कहा वे ठट्ठा कर खूब हंसे और कहा बच्चा सच है। उस खिलाड़ी को कुछ नहीं लगता तू तो एक की कहता है वह तो हजारों हाथी सुई के छेद में से निकाल सक्ता है। भाव में "ऐसा नहीं हो सक्ता" इसकी गुंजायश नहीं है और यदि मानते हो तो तुम्हारा भक्ति का आडम्बर वृथा है।

अयोध्या कांड में क्षेपक

गतांक से आगे

[ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०]

एक बात ध्यान देने की है कि अयोध्या से श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता शृङ्गवेर पुर तक रथ पर मंत्री सुमंत्र के साथ आये हैं। यहीं से निषाद राज का साथ हुआ है और वह भी भगवान् जी को जमुना पार करके लौटने का आदेश पाकर लौट जाता है तब भगवान् के साथ चलने को कोई नहीं रह जाता और ऐसी साधारण धारणा भी है कि यात्रा में तीन जनों को साथ न जाना चाहिये। एक दो या चार अथवा अधिक जन जा सकते हैं इस परिस्थिति में तीन जन का प्रस्थान अश्रद्धेय मानकर कई जन भिन्न २ पुकार की कल्पना गिड़ाते हैं वे यों हैं।

१. स्वयं अग्नि देवता भगवान का साथ देने चौथा जन बनकर आये हैं साथ बने रहने के प्रमाण यों दिये जाते हैं:-

सीता से भगवान् कहते हैं।

तुम पावक मंह करहु निवासा,
जब लगि करौं निसाचर नाशा॥

पावक साक्षी देहं करि जोरी पुनि बढ़ाई। साक्षी कोई समीप वासी ही होता है दूर से नहीं बुलाया जाता। 'श्री खंड सम पावक प्रवेश किये सुमिरि प्रभु मैथिली' इत्यादि

२. कोई २ कहते हैं भगवान् का स्वागत करने के लिये महामुनि वाल्मीकि जी अथवा चित्रकूट पर्वत् वा दण्डक वन किम्वा रावण वधका स्मारक कर्तव्य इस तापस का वेष धरके आया है।

कुछ महात्माओं का कहना है कि जब भगवान् यमुना पार कर चित्रकूट की ओर बढ़े तब वे गोसाईं जी के ग्राम राजापुर के आसपास होकर निकले। हमारे साक्षात् प्रभु हमारे गांवके समीप आ पहुंचे इस कल्पना ने गोसाईं जी के चित्त को आप्यायित करदिया; वे ध्यान में मग्न होगये और भूतकाल के समय का विचार न करके स्वयं तापस वेषधर भगवान् से भेंट करने जा पहुंचे और भगवान ने उन्हें पहिचान लिया। और प्रेम पूर्वक मिले कुछ लोग तो यहां तक कह डालते हैं कि गोसाईं जी को भावलीन होने पर कुछ सुध ही न रही। जब चैतन्य हुए तब ये पंक्तियां उन्हें लिखी हुई मिली गोसाईं जी की हस्तलिखित प्रति में ये पंक्तियां मिलती हैं इससे इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन पंक्तियों को वे हटाना नहीं चाहते थे और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वे अलक्षित गति शब्द से यह स्पष्ट भी नहीं किया चाहते थे कि यह कौन है पर नियत पथ क्रम में भङ्ग होते भी उसे वहीं रहने ही दिया। कवि लघु वयस तापस तेज पुञ्ज विरागी आदि शब्दों से यही कल्पना दृढ़ होती है कि हो न हो यह तापस रूप स्वयं गोसाईं जी का है।

आगे की पंक्तियां ध्यान पूर्वक पढ़ने से, विचार करने से, सत्कार के ढंग से गोसाईं जी की ही धारणा बलवती होती है। क्योंकि वह राम लक्ष्मण से मिला सीता की चरण धूलि सिर

लगाया आशीर्वाद पाया। राम सनेही देस के केवट ने भी उसे दण्डवत् किया। तब प्रश्न यह उठता है कि यदि इन पंक्तियों को रखना ही था तब अपने छन्द क्रम में भंग क्यों आने दिया? एक चौपाई की रचना कम करके ही छन्द रचना करके ही छन्द रच डालते। तब यह अनुमान होता है कि सम्पूर्ण कांड की रचना कर चुकने के पश्चात् गोसाईं जी को अपने ग्राम के समीप आने पर स्वागत की भावना उठी हो तब इन ध्यानावस्थित दशा में लिखी गई पंक्तियों का समावेश किया हो। पर क्रम भंग का दोष देखते कई संस्करणों में ये पंक्तियां नहीं दी गई हैं। क्रम में भङ्ग तो जहां तहां अन्यत्र भी मिल जाता है जैसे इण्डियन प्रेस के संस्करण में एकसौ पचासवें दोहे के पूर्ववर्ती चौपाई में आठ के स्थान में सात ही पंक्ति हैं। उसे अपनी ओर से रचना जोड़ कर पूरा करने की चेष्टा अनुचित है। लाला सुखदेवलाल ने अपनी टीका वाले संस्करण में सुना जाता है कि सभी कांडों में सभी चौपाई आठ पंक्ति की रखदी हैं। जहां अधिक पाया वहीं आठ से अधिक पंक्तियों को प्रक्षिप्त कहके निकाल फेंका और जहां न्यून पाया वहां कदाचित् जोड़ने की चेष्टा भी की है। पर यह चेष्टा कीट के समान अपने ही को नियम बन्धन में बांध लेने के समान अनधिकार चेष्टा जान पड़ती है केवल अयोध्याकांड में नियम पालन की प्रयास चेष्टा की है अन्यत्र यह बंधी पंक्तियां मिलती ही हैं। जिन लोगों का कहना है कि राजापुर वाली केवल अयोध्याकांड मात्र शेष जलमें फेंकी गई चिट्ठियों पूर्ति स्वयं गोसाईं जी की हस्तलिखित नहीं है उनके मत में ये पंक्तियां प्रक्षिप्त मानी जाने में कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती है।

अब एक महाशय की नवीन कल्पना को स्थान देकर समाप्त करना है, उन महाशय का कहना है कि चाहे कोई माने चाहे न माने उनके मत से उनके ही विचार ठीक हैं। वे कहते हैं कि भरद्वाज के यमुना लांघने पश्चात् महाराज दशरथ का शरीर त्याग हुआ। वे राम विरह से संतप्त थे अतएव उनका पूर्ण शरीर छोड़ने की बन्धन रहित होने ही प्रभु समीप आ उपस्थित हुआ। और प्रभु ने उन्हें पहिचाना इत्यादि।

शरीर बन्धन के छूटने पर जीव की अवश्य गतागति हो जाती होगी। लङ्का काण्ड में रावण वध के पश्चात् भी महाराज दशरथ के आने का उल्लेख गोसाईं जी ने किया ही है। पर महाराज दशरथ सीता माई के चरण धूलि को मस्तक पर क्यों धारण करेंगे यह प्रश्न किया जा सकता है पर उसका भी निराकरण यों कहके हो सकता है कि इस समय शरीर बन्धन छूटने पर उनकी आराधना सीतामाई की ओर पुत्रवधू की नहीं वरन परमात्मा आह्लादिनी शक्ति की धारणा है तब तो इस अन्तिम कल्पना को उठा फेंकने को और कारण खोज निकालना पड़ेगा।

शरीर छूटने पर जीवका साथी सम्बन्धियों के समक्ष जागते समय में उपस्थित होने के उदाहरण पाये ही जाते हैं। स्वप्न दर्शन की तो चर्चा न्यारी है हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों त्यों दृश्य मूर्त जीवका शरीरी पुरुष होना दुर्लभ होता जाता है। मृत्यु के तुरन्त ही पश्चात् मोहमाया में आवृत जीव के इष्ट जनों के समक्ष स्नेह पाश वा कठोर घेर नियंत्रने की चेष्टा में पुरुष होने के उदाहरण समधिक मिलेंगे। मृतजीव के लिये जीवित व्यक्तियों के समक्ष शरीर रूप में पुरुष होना अत्यन्त ही कठिन है ऐसा न होता तो बहुत से लोग पुरुष

होते पाये जाना संभव होता। विश्वसनीय उदाहरणों को पाकर इतना ही कहते बनता है कि कठिन होते भी सर्वथा असंभव नहीं है। कभी २ मृत जीव सहायता की अभिलाषा से अपने को व्यक्त करने की चेष्टा करता है। उस समय भगवान् के नाम या मंत्रोच्चारण द्वारा मार्जन कराने से उसे सहायता मिलती है और वह लिङ्ग शरीर वचनाधार में भी समर्थ होता है। जैसा कि भागवत महात्म्य में गोकर्ण के मन्त्र सिक्ततल से हतपाप हो धुन्धकारी, अपनी गति के लिये सहायता की प्रार्थना करता है। ऐसे अवसरों पर रामयण गीता अथवा श्रीमद्भागवत् के पाठ किये जाने से उसे छुटकारा मिलता है। बाचिल पाठ करने की प्रार्थना करने वाले जीव की कथा पढ़ने को विश्वस्त सूत्र से उपलब्ध होती हैं। यों महाराज दशरथ का भी उपस्थित होना सर्वथा असंभव भी नहीं है, परन्तु यह भेंट कुछ अधिक स्नेह पूर्ण वर्णन की जानी चाहिये थी; परन्तु रावण वध के पश्चात् की भेंट का भी उल्लेख सामान्य ही हुआ है।

जब स्वयं गोसाईं जी अलक्षित गति शब्दों द्वारा तथ्य का गोपन किया चाहते हैं तब तर्कनाएं और कल्पनाएं हमें निश्चित निर्णय पर पहुंचाने में समर्थ नहीं हो पाती हैं।

आओ ! आओ !!

(श्री 'ब्रह्म')

(ले० भागवत प्रसाद सिंह)

इस जीवन में भी मिलेगा हमें, क्या मोहन मूरत श्याम कभी ?
उसकी सब सांवली सूरत पर, वारेंगे तन मन प्राण सभी ॥

हैं स्वागत में उस प्राण सखा के, पलक-पांवड़े बिछे पड़े।
मैराश्य पूर्ण इस शुन्य हृदय में, बैठते हैं अरमान बड़े ॥

जीवन को मैं लुटा चुका हूं, चितवन की अभिलाषा में।
रहता हूं नित अलख जगाता, चित चोर ! तुम्हारी आशा में ॥

निष्ठुर अब नहीं अधिक सताओ, थकती है जीवन ज्वाला।
आओ आओ प्राण दुलारे, ब्रह्मानन्द का ले प्याला ॥

पुराण गाथा।

जय विजय को शाप।

(ले० श्री भोले बाबा जी)

नारद–हे शौनक! दिति के गर्भ के तेज से सब सूर्यादि लोकपाल हततेज होजाने से घबरागये और आठों दिशाओं में अंधेरा छा गया, तब सब देवता विश्वस्रष्टा ब्रह्मा जी के पास जाकर इस प्रकार निवेदन करने लगे।

देवता–हे देवों के देव! हे विभो! जिस अंधेरे से हम सब बहुत ही उद्विग्न हो रहे हैं, उस अंधेरे के कारण को आप जानते हैं, क्योंकि आपके ज्ञान को काल स्पर्श नहीं कर सक्ता यानी काल से आपका ज्ञान हत नहीं होता! हे प्रभो! आप जगत् के धाता हैं, लोकपालों में शिरोमणि हैं आप छोटे बड़े सब प्राणियों के अभिप्राय को जानते हैं विज्ञान आपका बल है, आपने अपनी माया से रजोमय ब्रह्मदेह को ग्रहण किया है, आप इस व्यक्त जगत् के अव्यक्त कारण हैं, इसलिये किसी प्रमाण से कोई आप को जान नहीं सक्ता! सबके जानने वाले को भला! कोई कैसे जान सक्ता है। नहीं जान सक्ता। आप सत् और असत् यानी कार्य कारण रूप इस जगत् से परे हैं, आपने चौदह भुवनों को अपने में फिरो रक्खा है जो भाग्यवान् आप आत्मभावन को अनन्य भाव से यानी भक्ति से भजते हैं, वे श्वास, इन्द्रिय और मनको जीतकर सुयुक्तयोग हो जाते हैं यानी योग को सिद्धि कर लेते हैं उनको आपका प्रसाद प्राप्त होता है, उनका कहीं पराभव यानी हार नहीं होता और जो मूढ आपको कामना से भजते हैं, उनका जहां वे जाते हैं, वहीं पराभव होता है यानी वे जन्म मरण रूप संसार चक्र में पड़ कर बारंबार चढ़ते और गिरते रहते हैं। जैसे नाथ से नथे हुए बैल मनुष्यों का बोझा ढोते रहते हैं, इसी प्रकार आपकी वेद रूप वाणी में बंधी हुई सब प्रजा आपके लिये बलि देती रहती है, इसलिये आप मुख्य देव हैं, आप मुख्य देवको नमस्कार है! हे देव! दिन रात रूप काल का विभाग न होने से हम सब सुप्तकर्म हैं यानी कर्म नहीं करते, हे भगवन्! आप हम शरणागतों को शान्ति दीजिये और अत्यन्त दया की दृष्टि से देखिये! हे देव! जैसे ईंधन डालने से अग्नि की ज्वाला बढ़ती चली जाती है, इसी प्रकार कश्यप का अर्पण किया हुआ दिति का गर्भ बढ़ता चला जाता है और दिशाओं को अन्धेरे से ढाकता चला जाता है, इसलिये हम दुःखी हो रहे हैं। आप कृपया इसका कारण और इसकी निवृत्ति का उपाय भी बताइये नहीं तो हम सब नष्ट होजांय। पुजारी की दौड़ मन्दिर तक है, इसी प्रकार हमारी दौड़ आप तक ही है, आपही हमारे प्रभु और संरक्षक हैं।

नारद–हे शौनक! देवताओं के तत्त्वबोधक वचन सुनकर और दिति की कुचेष्टा का स्मरण करके शब्दगोचर आत्मभू भगवान् ब्रह्मा जी हंसकर देवताओं को प्रसन्न करते हुए मधुर वाणी से इस प्रकार कहने लगेः–

ब्रह्मा–हे देवो! एक बार तुम सबसे पूर्व उत्पन्न हुए, निस्पृही निर्मल अन्तःकरण मेरे मानसी

पुत्र सनकादिक लोकों में विचरते हुए विष्णु भगवान् के सर्व लोकों से नमस्कृत वैकुंठ स्थान में पहुंचे। वहां पर सब पुरुष विष्णुमूर्ति हो, वास करते हैं और वे फल की इच्छा रहित निष्काम धर्म से हरि का आराधन करते हैं। वहां पर वेदान्त वाक्यों से वेद्य, आद्य पुरुष धर्ममूर्ति भगवान् रज-रहित, सत्यमूर्ति धारण करके हम सब अपने भक्तों को आनन्द देते हैं। वहां पर मूर्तिमान् कैवल्य के समान नैश्रेयस नाम का वन है, जिसमें कामधुक यानी कामना पूर्ण करने वाले वृक्ष हैं, जो वसंतादि कर्म ऋतुओं की शोभा से शोभायमान हैं। वहां पर ललनाओं सहित विमानों में बैठे हुए देवता मनो के लोकों के पाप को नष्ट करने वाले चरित्र गाते हैं और जलके भीतर खिलने वाली चैत्र वैशाख की लताओं की गंध से विक्षिप्त बुद्धि होकर भी उस गंध को लाने वाले वस्तु का तिरस्कार करते हैं। भाव यह है कि भगवान् के पार्षद निरतिशय सुख के विषय को भी त्याग कर भगवद्भजन में अनुरक्त रहते हैं। है भी ठीक ही, भला सच्ची मिठाई खाने वाले की झूंठी मिठाई खाने में कब रुचि होसक्ती है। नहीं हो सक्ती! पारावत, कोकिला, सारस, चक्रवाक, चातक, हंस, शुक यानी तोते, मीतर, मोर, इत्यादि पक्षियों का कोलाहल कुछ देर तक बन्द होजाता है, जब कि ये पक्षी भृंगों के राजा को हरिकथा गाते हुए के समान सुनते हैं। भाव यह है कि वहां के पक्षी भी हरिकथा के सुनने में आनन्द मानते हैं। मंदार, कुन्द, कुरव यानी तिलक वृक्ष, उत्पल यानी रात में खिलने वाला कमल, चम्पक यानी चम्पा, कनेर, पुन्नाग, नागकेसर, मोरसिली, अंबुज यानी दिन में खिलने वाले कमल और पारिजात इत्यादि के पुष्प श्रीहरि की तुलसी की गंध से अर्चित उस वन में तुलसी के तपकी सराहना करते हैं। भाव यह है कि वहां के रहने वाले सब गुण ग्राही ही हैं, दोषों करने वाले नहीं हैं। ऐसे वैकुंठ में सनकादिक पहुंचे।

हे देवो! वह वैकुंठ हरिचरणों को प्रणाम मात्र करने वाले भक्तों से और वैदूर्य, मरकत और हेममय विमानों से भरा हुआ है, उन कृष्ण में मन लगाने वाले भक्तों को बृहत् कटिवाली और हास्ययुक्त शोभन मुख वाली ललनायें अपने परिहास आदि से काम की उत्पत्ति नहीं कर सक्तीं। वहाँ पर मनोहर मूर्ति धारण करने वाली, दोषों से रहित लक्ष्मी, जिसके अनुग्रह के लिये अन्य लोग प्रार्थना करते हैं हाथ में कमल लिये हुए, चरण कमलों के नुपुरों से शब्द करती हुई, स्फटिक की दीवारों वाले, सुवर्ण से संयुक्त हरि के सदन में बुहारी देती हुई सी दिखलायी देती है। हे देवो! विद्रुममणि से जड़ी हुई सीढ़ियों वाली, अमृत रूप निर्मल जल वाली वापिकाओं में परिचारकाओं सहित लक्ष्मीवन में लक्ष्मी विष्णु भगवान् का तुलसियों से पूजन करती हुई उनके जल में शोभन अलकों से और ऊंची नसिका से युक्त अपने मुख की छाया को देखकर भगवान् से चुम्बन किया हुआ मानती है। भाव यह है कि लक्ष्मी का सौभाग्य सुख भी भगवान् के अनुग्रह के अधीन है। जो लोग अघनाशक भगवान् की सृष्टि लीलाओं को नहीं सुनते किंतु उनसे अन्य बुद्धि को विक्षिप्त करने अर्थकामादि संबंधी कुकथाओं को सुनते हैं, वे वहाँ नहीं जाते, क्योंकि वे कुकथायें हतभाग्य मनुष्यों के पुण्य रूप सार को हरलेती हैं और अंधकार रूप नरक में डाल देती हैं। ऐसे लोग शोचनीय हैं, क्योंकि जिस मनुष्य जाति की हम ब्रह्मादिक भी इच्छा करते हैं और जिसमें धर्मसहित तत्वज्ञान प्राप्त होता है, उस मनुष्य जाति को प्राप्त होकर भी जो नारायण का मनुष्य आराधन

नहीं करते, वे भगवान की अपार माया से संमोहित हैं। जो भाग्यशाली भगवान् की आराधना करते हैं, वे ही उस वैकुंठ में जाते हैं। हरि सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं, जो उन हरि भगवान् का आराधन करते हैं, यानी परस्पर भर्ता का सुयश गाते हैं, कथा के अनुराग से विकल होकर अश्रु-धारा बहाते हुए पुलकित अंग हो जाते हैं, वे मेरे लोक से ऊपर स्थित वैकुंठ लोक में जाते हैं और फिर उनको यम का भय नहीं रहता और वे सर्वदा के लिये निर्मोह निःशोक और अभय हो जाते हैं।

हे देवो! उस अपूर्व, दिव्य, अनेक देवताओं के विमानों से दीप्तिमान, भुवनों में एक ही वन्दनीय, विश्व के गुरु भगवान् से अधिष्ठित वैकुण्ठ में सनकादि मुनि योगबल से पहुंच कर परम आनन्द को प्राप्त हुए। समान आयु वाले मुनि छः कक्षाओं को पार करके, भगवद्दर्शन के उत्सुक होने से उन कक्षाओं में मन लगा कर सातवीं कक्षा में पहुंचे। उस कक्षा के फाटक पर उन्होंने समान आयु वाले बहु मूल्य केयूर कुण्डल और मुकुट धारण करने वाले, सुन्दर वेष वाले और गदा हाथ में लिये दो देवता देखे। वे दोनों कण्ठ में सम्बी वन माला पहिने हुये थे, वन माला पर मत्तभ्रमर गूंज रहे थे, दोनों की चार २ भुजायें थीं, टेढ़ी भ्रकुटियां थी, दोनों के नासापुर फूल रहे थे, लाल २ नेत्र थे, जिनसे उनके मुख कुछ २ क्रोधित से दीखते थे। जैसे पूर्व की कक्षाओं के सुवर्ण और वज्रमय कपाट वाले फाटकों में चारों ऋषि बिना पूछे ही घुसे थे, इसी प्रकार दोनों द्वारपालों के देखते हुए बिना पूछे ही उस कक्षा में घुसने लगे, क्योंकि ये चारों समदर्शी हैं और सर्वत्र बिना रोक टोक जासकते हैं।

हे देवताओ! उन दिगम्बर वेष वाले, पांच वर्ष के बालक से प्रतीत होने वाले, सब से वृद्ध, आत्मतत्वज्ञानी चारों कुमारों को देख कर उन दोनों ने उनको रोकने के लिये उनके शरीर पर वेत्र लगा दिया। यद्यपि वे महातेजस्वी थे और वेत्र मारने के योग्य न थे, फिर भी भगवान् के स्वभाव से प्रतिकूल स्वभाव वाले उन दोनों ने उनके तेज का निरादर करके वेत्र लगा ही दिया। देवताओं के सामने हरि के उन द्वारपालों के निषेध करने पर सुदत्तम भगवान के देखने की इच्छा में भंग पड़ जाने से सनत्कुमारादि देवश्रेष्ठों की आंखें किंचित् क्रोध आ जाने से अकस्मात् क्षुभित हो गयीं और वे इस प्रकार कहने लगे:-

सनकादि-हे द्वारपालो! भगवान् की उत्तम परिचर्या प्राप्त करके यहां वैकुण्ठ में रहने वाले समदर्शी भगवद्भक्तियों के मध्य में 'किसी को प्रवेश करने देना, किसी को नहीं' ऐसा तुम्हारा विषम स्वभाव क्यों है। यदि कहो कि स्वामी की रक्षा के लिये द्वारपालों का ऐसा स्वभाव भूषण ही है, तो ऐसा नहीं है क्योंकि भगवान् प्रशान्त स्वभाव वाले हैं और विग्रह से रहित हैं, ऐसे भगवत् की सेवा में सिवाय भगवद्भक्तों के कोई आता ही नहीं है, तुम आप कपटी हो और अपने समान दूसरों को भी कपटी समझते हो, इसलिये तुम को दूसरों से भय की शंका है। भय का कारण भेद है, यहां पर सिवाय तुम्हारे अन्य कोई भेद नहीं देखता, तुम ही भेद देखते हो जिन भगवान् की कुक्षि में समस्त विश्व है, उन भगवान् में और पुरुष आत्मा का भेद नहीं देखते किंतु जैसे घटाकाश महाकाश के अन्तर्भूत है, इसी प्रकार परमात्मा में आत्मा को अन्तर्भूत देखते हैं। परमात्मा में किंचित् भी भेद देखने वालों को भय होता है, तब देवता हो कर भी तुम दोनों की भेद दृष्टि क्यों होनी चाहिये? नहीं होनी

चाहिये। इसलिये वैकुण्ठनाथ के तुम दोनों सेवकों के कल्याण के लिये इस अपराध के बदले में जो कुछ करना युक्त है, यह हम विचारते हैं कि भेद भाव के देखने से तुम दोनों वैकुण्ठ लोक से ऐसे लोकों में चले जाओ, जहाँ भेद भाव दृष्टि वाले पापियों को कष्ट देने वाले काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु रहते हैं।

हे देवो! मुनियों के इस भाषण को घोर समझ कर उस ब्रह्मदण्ड को अस्त्र समूहों से अनिवार्य जान कर और ऐसे मुनियों से भगवान् हम से भी अधिक भय मानते हैं, ऐसा समझ कर उसी क्षण हरि के अनुचर भय से कातर हो कर दण्ड के समान इनके चरणों में गिर पड़े और सनकादि की कृपायुक्त दृष्टि देख कर इस प्रकार कहने लगे:-

द्वारपाल-हे मुनीश्वरो! हम पापियों को आपने जो दण्ड दिया, यह उचित ही है, इसमें आप का कोई अपराध नहीं है, इसलिये यह दण्ड हम दोनों को भले हो! क्योंकि ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन यानी देवताओं का निरादर रूप पाप जो हमने किया है, उस समस्त पाप को यह दण्ड हर लेने वाला है किन्तु यदि आप हमारे ऊपर कृपा करना चाहते हैं, तो हमारे ऊपर इतनी कृपा कीजिये कि आप की कृपा से हम जिस २ नीच योनि में जायँ वहां हम को भगवान् की स्मृति हरने वाला मोह न हो किन्तु मोह में भी हमें भगवान् का स्मरण बना रहे!

ब्रह्मा-हे देवी! यह समाचार सुन कर भगवान् भी वहाँ आ गये और शाप मेटने को समर्थ होने पर भी उन्होंने शाप को अंगीकार कर लिया और द्वारपालों को समझा बुझा कर मृत्युलोक में भेज दिया। भगवान् के जय विजय नाम के ये दोनों द्वारपाल दिति के गर्भ में कश्यप के वीर्य से आये हुए हैं। दिशाओं में अन्धकार आदि सब इन्हीं के कारण से हैं तुम सब कुछ भय मत करो, आपत्ति काल में भी सावधान रहता है, वह ही धीर है वह ही विद्वानों की सभा में शोभा पाता है, जो मूढ थोड़े से दुःख से घबरा जाते हैं, उनकी पण्डित प्रशंसा नहीं करते किन्तु निन्दा ही करते हैं। हैं भी वे निन्दनीय ही तुम सब देवता सतोगुणी हो, सतोगुणी की अन्तः करण की वृत्ति शान्त होती है, तुम सब को शान्त रहना चाहिये। जो कुछ होना होता है, हो कर रहता है, इसमें संशय नहीं है। जगत् आधार और अधिष्ठान मुकुन्द भगवान् सब के हृदय में विराजमान हैं, उन्हीं सुहृत् भगवान् की शरण जाओ! जैसे मछलियां अगाध जल में सुखी रहती हैं, इसी प्रकार भगवत् शरण में रहने वाले सर्वदा सुखी और शान्त रहते हैं, इसलिये समस्त भय के नाशक जनार्दन भगवान् की शरण लेकर निःशंक, निर्मोह और निर्भय हो जाओ!

पाठक! इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि भगवद्भक्तों का निरादर करने वाले वैकुण्ठ से भी गिरा दिये जाते हैं, जैसे जय विजय, और भगवद्भक्तों का आदर करने वाले कुसंग में होने पर भी शान्ति पाते हैं, जैसे विभीषण और प्रह्लाद।

छप्पय-पार्षद गिरे श्रीविष्णु के, सनकादिका अपमान कर।
प्रह्लाद हरि प्यारा भया, नारद सिखावन मान कर॥
भोला! सभी को मान दे, छोड़ न कोई जान रे।
जो मान देता सर्व को, पाता सदा सन्मान रे॥

श्रीभगवच्चर्चा

द्वितीय चर्चा।

मङ्गल जन्म।

द्रविड देश का भूप पुरञ्जन।
तासु पुरोहित नाम निरञ्जन ॥ १ ॥
दोनों ही ज्ञानी विज्ञानी।
भगवत्सेवी शान्त अमानी ॥ २ ॥
गुरु वसिष्ठ जिमि सुज्ञ सुपण्डित।
तथा निरञ्जन विद्यामण्डित ॥ ३ ॥
सत्य संघ दशरथ नृप जैसे।
धर्मधुरीण पुरञ्जन तैसे ॥ ४ ॥
पालन पूजा पुत्र सम जानी।
पिये क्षीर बकरी संग पानी ॥ ५ ॥
शोभामूर्ति भूप पटरानी।
नाम सुशीला परम सयानी ॥ ६ ॥
पति देवता सुपंकज लोचनि।
सुमुखी सुदती रति मद मोचनि ॥ ७ ॥
सेवत भर्ता ईश्वर मानी।
जिमि भजनी भव मातु भवानी ॥ ८ ॥

दो–मंत्री आदिक चतुर सब, निर्लोभी हरि भक्त।
नीति निपुण निजधर्म पर, धीर उदार विरक्त ॥ १ ॥

धर्म परायण सब नर नारी।
निज २ वर्णाश्रम अनुसारी ॥ १ ॥
करें प्रेम से हरि पद अर्चा।
सुनें सुनावें भगवच्चर्चा ॥ २ ॥
इन्द्रियजित निर्मल मन सबही।
वैर परस्पर करें न कबही ॥ ३ ॥
ईर्षा द्वेष न मन में राखें।
पर तोलें हितमित भाषें ॥ ४ ॥
करें कर्म सब ईश्वर अर्पण।
सब उदार मन कोई न कृपण ॥ ५ ॥
परदारा निज माता मानें।
धूल समान द्रव्य पर जानें ॥ ६ ॥
विना मूल्य की वस्तु न लेंही।
दाम सवाये डयोढे देंही ॥ ७ ॥
कोई क्रूर न कोई दुर्जन।
सरल स्वभाव सभी जन सज्जन ॥ ८ ॥

दो–सुखी स्वस्थ छोटे बडे, दुःखी दीन न कोय।
भगवद्भजन प्रताप से, प्राप्त सभी कुछ होय ॥ २ ॥

एक दिवस नृप सह पटरानी।
गुरु गृह पहुंचे दोनों प्राणी ॥ १ ॥
गुरु पद वन्दि जोडि युग पाणी।
ले आज्ञा बोले मृदु वाणी ॥ २ ॥
प्रभो ! विश्व यह है स्वप्ना सा।
मुझें कुं भासे सच्चा सा ॥ ३ ॥
ईश्वर सच्चा जग है माया।
ऐसा वेद पुराणन गाया ॥ ४ ॥
स्वयं आप ऐसा बतलाया।
समझ हमारी में भी आया ॥ ५ ॥
मुख करें जे जग की आशा।
कल्पों करें नरक में वासा ॥ ६ ॥
भोगे भोग गयी तरुणाई।
अब तक तृप्ति लेश ना पायी ॥ ७ ॥
इच्छा इसें न भोगों मांही।
पुत्र होन की आशा नांही ॥ ७ ॥

दो–आज्ञा स्वामिन् ! दीजिये, हितकर ! दीनदयाल।
वन जाने की भजन हित, लीजे राज्य संभाल ॥ ३ ॥

ज्ञानी गुरु सुनि दम्पति वाणी।
ज्ञान विराग भक्ति रस सानी ॥ १ ॥
क्षणभर चित्त समाहित कीन्हा।

भावी चरित जानि सब लीन्हा ॥ २ ॥
हो प्रसन्न बोले मुसिकाई ।
बात तुम्हारि मोर मन भाई ॥ ३ ॥
सोची तुमने बात खरी है ।
पर भावी क्या कभी टरी है ॥ ४ ॥
राजन तुम्हीं राज्य अधिकारी ।
राज्य योग्य ना जन्म भिखारी ॥ ५ ॥
भजन अभी तुम करो यहां ही ।
बन का समय अभी है नांही ॥ ६ ॥
पुत्र तुम्हारे होगा हरिजन ।
सुख पावेंगे जिससे सज्जन ॥ ७ ॥
कुल भूषण सुत अस जन्मेगा ।
यश जिसका जग में फैलेगा ॥ ८ ॥

दो–कहूं कथा मन भावनी, पुत्रोत्पत्ति उपाय ।
कहत सुनत आल्हाद हो, सुनिये चित्त लगाय ॥ ४ ॥

हिरण्याक्ष दितिसुत का वध करि ।
पृथिवी लाये शूकर बन हरि ॥ १ ॥
हिरण्यकशिपु नृहरि बन मारा ।
निज भक्तों का यश विस्तारा ॥ २ ॥
निज पुत्रों को मारा जाना ।
सुनि दितिमाता अति दुख माना ॥३॥
करत विलाप कहत मन मांही ।
भाग्य हीन मोसी जग नांही ॥ ४ ॥
सौ वर्षों लों धरे उदर में ।
तिन बिनु कैसे करूं सबर मैं ॥ ५ ॥
जाको नांही फटी बिवाई ।
सो क्या जाने पीर पराई ॥ ६ ॥
महा कष्ट से दो सुत आये ।
इन्द्र विष्णु हाथन मरवाये ॥ ७ ॥
नहीं इन्द्र से बदला लीन्हा ।
तो धिक् मुझ पापिन का जीना ॥ ८ ॥

दो–इन्द्र मरण का चाहिये, करना मुझे उपाय ।
हिंसक हिंसा वध नहीं, धर्मशास्त्र बतलाय ॥ ५ ॥

मरे इन्द्र शठ भ्राता घाती ।
होय तभी मम शीतल छाती ॥ १ ॥
विष्टा भस्म कृमिन का खाजा ।
जो तन कहलाता है राजा ॥ २ ॥
ता हित मूढ द्रोह जे करते ।
घोर नरक से तो ना डरते ॥ ३ ॥
अस तनु हित मरवाये भ्राता ।
मूढ इन्द्र धन बल मदमाता ॥ ४ ॥
ता का घातक मम सुत होई ।
करूं यत्न निश्चय मैं सोई ॥ ५ ॥
अस विचार दिति सब सुख त्यागी ।
निज पति कश्यप सेवन लागी ॥ ६ ॥
परम भक्ति मे मृदु वचनों से ।
चितवनि हसनि हाव भावों से ॥ ७ ॥
पति सेवा में तन मन दीन्हा ।
कश्यप ऋषि मन वश कर लीन्हा ॥८

दो–कायर करदे शूर कूं, पंडित कूं अति मूढ ।
योषित में विश्वेश अस, शक्ति धरी है गूढ ॥ ६ ॥

सेवा वश मुनि वर विज्ञानी ।
हो प्रसन्न बोले मृदु बाणी ॥ १ ॥
तूं प्रसन्न वर मांग सुनयनी ।
जो मांगे दूं वही सुवयनी ॥ २ ॥
परम देव नारी का स्वामी ।
श्रीपति सबका अन्तर्यामी ॥ ३ ॥
रूप वही है नाना धरता ।
नर नारि सब का ही भर्ता ॥ ४ ॥
श्रेयकांक्षिणी नारी सयानी ।
सेवत पति कूं ईश्वर मानी ॥ ५ ॥
सो मैं तू मे तन मन वाणी ।

पूजा अब वर मांग सयानी ॥ ६ ॥
ऐसी मुझ पर करुणा कीजे ॥ ८ ॥

दिति बोली स्वामिन् करुणाकर।
पुत्र शोक से हूं चिंतापर ॥ ७ ॥
इन्द्र विनाशक सुत प्रभु दीजे।

दो–दिति के ऐसे बचन सुनि, ऋषिवर हुए उदास।
कैसा हुआ अनर्थ यह, कीन्ह नारि विश्वास ॥ ९ ॥

दर्शन-परिचय।

(ले० पं० शिव नारायण जी शास्त्री)

यः शङ्करोऽपि प्रलयं करोति स्थाणुस्तथा यः परपुरुषोऽपि।
उमागृहीतोऽप्यनुमागृहीतः पायादपायात स हि नः स्वयम्भूः॥

कभी वह समय था जब कि प्रायः सभा भारतवासी पूर्णज्ञानी होते थे। प्रत्येक (हर एक) द्विज [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य] वेद और दर्शनों को पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। जो लोग अपनी अवस्था विशेष के कारण इनको नहीं पढ़ सके थे, वे भी पुराण और इतिहास से ही इनके ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे। यहां तक कि यदि उन दिनों में कोई अनपढ़ भी होता तो वह भी दार्शनिक विचार रख सकता था, क्योंकि उस समय पुराण आदि की कथा वार्तायें सर्वत्र होती थीं। नगर २ में घर घर में और प्रत्येक देवालय (मन्दिर) तथा पवित्र स्थानों में इनका प्रचार था, और इसमें सन्देह नहीं कि, इनके वर्णित वृत्तान्तों के प्रत्येक अङ्ग में मित्र शब्द की भान्ति दार्शनिक विचारों की तरङ्गें बह रही हैं। इसी कारण से भारतीय दार्शनिक होते थे, और यह प्रवाद कि "आर्यजाति तार्किकों की जाति है" आज तक भी प्रचलित है।

परंतु अब शोक के साथ कहना पड़ता है कि इस समय हमारी वह दशा होगई है, जैसी किसी सुगन्धित पदार्थ वाले पात्र की उन पदार्थों के निकल जाने से हो जाती है, अर्थात् जैसे किसी पात्र में पहले सुगन्धित पदार्थ हों फिर उन 'पदार्थों' के निकल जाने से उसमें केवल सुगन्धि का लेश रह जाता है, ठीक वही दशा हमारी होगई है क्योंकि आज हमारी जाति में वे दार्शनिक विचार नहीं रहे किंतु केवल पूर्वजों के क्रमागत संस्कार से उनकी सुगन्धि का लेश रह गया है। और इस समय हममें ऐसे सज्जनों की भी कमी नहीं है जो कि इन पूर्वजों के नाम तक को भी नहीं जानते, और जो लोग उनके नाम जानते भी हैं तो वे केवल कभी २ गौरव के साथ उनके कपिल और कणाद आदि नाम मात्र ही को ले लेते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि वे महानुभाव ऋषि महर्षि हमारे लिए वे अमूल्य रत्न छोड़ गये हैं कि जिससे यह जाति सदा प्रकाशित और अजर अमर रहेगी।

भारत वासियो! उठो जागो इस अज्ञान निद्रा से आंखें खोलो।

यद्यपि आज तुम्हारे पास कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिससे कि और अन्य जातियों की दृष्टि में तुम्हारा गौरव हो, तथापि घबड़ाओ मत आज भी तुम्हारे पास वे अमूल्य रत्न मौजूद हैं जिनके प्रताप से अन्य जातियें चाहे वे कितनी ही उन्नति क्यों न

कर सांय तुम्हारे सामने सदा सिर ही झुकाती रहेंगी और वे अमूल्य रत्न हैं दर्शन शास्त्र और उनके विचार।

पर देखो कहीं ऐसा न हो कि इतर देशी इनका आनन्द लूटें और तुम वञ्चित रह जाओ। आज यूरोप निवासी विद्वान इनसे मोदित हो रहे हैं। इनकी प्रशंसा में उनकी जिह्वा 'जीभ' नहीं ठहरती, उनको ज्ञात होचुका है कि जहां पश्चिमी तर्क समाप्त होता है वहां पूर्वीय दर्शनों का प्रारम्भ होता है। आज ये कितने परिश्रम, उत्साह और उत्कण्ठा से इनके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु शोक! आज भारतवासियों को यहां तक भी विदित नहीं कि हमारे पास क्या है और उसका मूल्य क्या है।

आज वही आर्य सन्तति जो सब देशों में मूर्धन्य गिनी जाती थी "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" दृढ़ प्रतिज्ञ थी, धर्म परायण थी, वीर थी, दार्शनिक विचारों से विमुख होकर पौराणिक धार्मिक वार्ताओं को बाह्यात गप्प कहे और रद्दी, चौकी तोड़ः उपन्यास, किस्सा, नाटक आदि अश्लील गन्दे मार्ग में अपने अमूल्य जीवन को गवावें यह कितने दौर्भाग्य की बात है। आज यह किसी की कहावत अक्षरशः सत्य सी होती जारही है कि:-

'गता गीता नाम्नं निगम पदवी दूरमगमत्,
विनष्टाः श्रुत्यर्थाः क्वचिदपि पुराणं न स्मरति।
इदानीं रैदासप्रभृतिवचसा मोक्षपदवी,
न जाने को हेतुः शिव शिव!! कलेरेष महिमा॥'

पर याद रक्खो परीक्षित् सरीखे धर्म वीरों का चरित्र स्मरण करो कभी अपने कर्तव्य से च्युत मत हो, यही युग तुम्हारे लिये तरण तारण बन जायगा। कर्मवीर बनो, दूसरों को बनाओ, अपने स्वरूप को पहचानो, अन्यथा पीछे बहुत पछताओगे खाली हाथ यहाँ से जाने पाओगे, मित्रो! इन नीचे लिखे श्लोकों को कण्ठ कर जाओ और खाली कण्ठ ही मत करो किन्तु बर्ताव भी उनके अनुसार ही करना शुरु करदो देखो फिर कैसे परम सुख न होगा?

"त्यज दुर्जन संसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥ १॥

दुर्जनों की संगति छोड़ो, सज्जन आप्त पुरुषों की सङ्गति करो, दिन रात या प्रति दिन पुण्य किया करो और हमेशा अनित्यता को याद रक्खो॥

पर बड़े आश्चर्य की बात है दुनियां दूसरों का मरना देखती हुई भी अपना मरना नहीं देखती।

"अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थिरत्व मिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥"

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुर्द्वेष्येवाविशेषयः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति॥ २॥

प्रायः हर एक प्राणी में गुण और दोष हुआ ही करते हैं किसी में ज्यादा और किसी में कम अतः बुद्धिमान् को चाहिए कि वह जहां तक होसके दूसरे के गुणों को ही प्रसिद्ध करे और जहां तक हो सके दोषों को छिपावे, देखो त्रिलोक शंकर भगवान् ने भी गुणरूप चन्द्रमा को मस्तक पर धारण कर प्रकाशित किया और दोष रूपी कालकूट 'जहर' को अपने गले में छिपाया है॥ २॥

न त्वहं कामये राज्यं न सुखं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ ३॥

असल तत्ववेत्ता पुरुष वही है जो कि राज्य, सुख और मुक्ति की भी कामना को छोड़ कर दुःखित प्राणियों के दुःख दूर करने में अपनी जीवनी बिताता है॥ ३॥

यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवतु।
वयांसि किं न कुर्वन्ति चञ्चवा स्वोदर पूरणम्॥ ४॥

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ ५ ॥

जिसकी जीवन दशा में बहुतों का भला होता है वास्तव में उसका जीवन सफल है, यौंतो पक्षी भी चांच से अपना पेट भरा ही करते हैं ॥ ४ ॥ प्यारे मित्रो ! यों तो धर्म विराट स्वरूप है उसका वर्णन एक बड़ी भारी पुस्तक से भी होना कठिन है पर उसका रहस्य कहा जाता है सुनिये, खाली सुनो ही मत किंतु उसे धारण भी अवश्य करिए। असली धर्म वही है जिससे दूसरों का भला हो या यों कहिये दूसरों का भला करना ही मुख्य धर्म है और पाप वही है जिस से दूसरों को तकलीफ हो अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिए कि दूसरों को तकलीफ देना ही महापाप है ॥ ५ ॥

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥ ६ ॥

संसार में सच्चा विवेकी या विचारशील वही पुरुष है जो दूसरे की स्त्रियों को माता के समान, दूसरे के धन को ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है। तुलसीदास की प्रतिज्ञा है कि जो प्राणी ऐसा बर्ताव करता है, उसे अवश्य ही भगवान् का साक्षात्कार होता है, यदि न हो तो मुझे इस विषय में जामिन समझो ॥ ६ ॥

यह दार्शनिक विचारों का ही अनुपम प्रताप था कि इसी भारत वर्ष में प्रायः सभी स्त्री और पुरुष सच्चे धार्मिक सच्चे कर्मवीर, सच्चे सत्यवादी और सच्चे भक्त होते थे, पर शोक के साथ कहना पड़ता है। आज वही आर्य सन्तान प्रायः विषय लम्पट, दाम्भिक, आलसी और स्वार्थ तत्पर नजर में आरही है। प्यारे भाइयो ! आओ फिर भी सच्चे गुरुकी शरण लें अपने सच्चे मार्ग पर आरूढ होवें और विषय ज्वाली के मुख से बाहर निकलें।

शास्त्र हमें उपदेश देता है-"तुम प्रति दिन शास्त्र विहित शुभ कर्म करो पर कामना मत रक्खो जो कुछ करो भगवान के अर्पण करो, कर्ता अपने को भूल से भी कभी मत समझो. दुनियां के भोग मजेसे भोगो पर उनमें कभी भूल से भी आसक्ति मत करो. ज्ञान होने पर भी कभी कर्म न छोड़ो किन्तु लोक संग्रहार्थ करते ही रहो, इस प्रकार धर्माचरण करने से तुम कभी न कभी अवश्य ही ऋषि अथवा सिद्ध बन जाओगे। जैसा कि भगवान् कणाद कहते हैं।

"आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः" [१ । २ । १३]

अर्थात् आर्ष ज्ञान और सिद्ध ज्ञान, धर्म से होता है। भगवान् पतञ्जलि भी कहते हैं:-

"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये-
ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः" [यो० २ । २८]

अर्थात् यम नियम आदि योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से विपर्यय ज्ञान रूप अशुद्धि का नाश होने पर प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान पर्यन्त, सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है।

भगवान् श्रीमुख से कहते हैं:-

"ज्ञानवान्मां प्रपद्यते'
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥

अपूर्ण

दीनबन्धु

(ले० पं० बाबूलाल भार्गव)

माया नदी तेरी माथ कैसो ये बिछायो जाल।
पञ्च तार ताने पञ्च बाने में लगाये हैं॥
देखि सुनि सूंघि चाखि परसि फंसाय मन।
निकसत नांहि कोटि यतन कराये हैं॥
जो है दुख मूल ताहि सुख को निधान जान्यो।
मानत न मन बार बार समझाये हैं॥
श्रमकर थाके धीरजनिधि बल हीन भये।
दीनबन्धु आस अब तेरी ही लगाये हैं॥

हरि नाम सुमरन।

(ले० श्री महात्मा राम)

'सुमिरहु सुमिरि सुमिरि सुख पावहु।
कलि कलेश तन माहि मिटावहु॥ १॥

उस परमात्मा के नाम का सुमिरन करो जो सदा ही हमारी सब की रक्षा करता है। उसके नाम का सुमिरन करके तुम उस परम सुख का उपभोग करो जो सुख सदा एक रस रहता है और जो 'मोक्ष' इस नाम से कहा जाता है। उस परमात्मा सम्बन्धि सुख को प्राप्त करके 'कलिकलेश तन माहि' कलियुग के कलेश जो शरीर को अग्नि के समान तपाते हैं उन क्लेशों को अपने तन से मिटादो अर्थात् नाम के सुमिरन रूप जलसे कलि के क्लेश रूप अग्नि को शान्त करो। उसके नाम का सुमिरन करो जो इस विश्व को अकेला ही पालन पोषण करता है। वह एक ही परमेश्वर जब इस प्रकार का विचार करता भया कि मैं अनेक रूपहो जाऊं तब वही अनगिनत अनेक रूप हो गया। वेद पुरान, स्मृति और सन्तों ने मिल कर एक राम का नाम ही सार माना है और सब असार है इसलिये राम नाम का ही सुमिरन करो।

'किन का एक जिस जीह बसावै,
ताकी महिमा गनी न आवै'॥

परमात्मा के नाम का एक छोटा सा किनका मात्र भी जिसकी जिह्वा पर रहता है उसकी महिमा कौन कह सक्ता है।

'कांक्षी एकै दरश तुम्हारो, नानक उन संगिमोहि उधारो'।

श्री नानक देव जी कहते हैं की हे महाराज जिनको केवल एक मात्र आपके ही दर्शन की अभिलाषा है औरवे कुछ नहीं चाहते हैं। हे प्रभु! उन अपने भक्त जनों के साथ मेरा भी उद्धार करो। परमेश्वर का नाम जो अमृत के समान है वह अपने

भक्तजनों के मन रूपी मन्दिर में विश्राम करता है। उस प्रभु के नाम को सुमिरन करने वाला फिर माता के गर्भवास में नहीं आता और यमराज के दुःखों से छूट जाता है क्योंकि काल उसी को खाता है जो भगवान का नहीं बना है अर्थात् जो भगवान् को प्राप्त होता है उस का काल नहीं रहता है। परमेश्वर के सुमिरन करने से सर्व प्रकार के दुश्मन जो काम क्रोधादिक अन्तर के शत्रु हैं तथा बाहर के जो अपने साथ अकारण ही वैर भाव रखते हैं वे सर्व दूर हो जाते हैं। परमात्मा के नाम सुमिरण करने से सर्व विघ्न नष्ट हो जाते हैं क्योंकि नाम का सुमिरन मंगल रूप है।

'मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः' ॥
'सर्वदा सर्व कार्येषु, नास्ति तेषाममंगलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान्मंगलायतनो हरिः' ॥
'अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभ संततिम्।
स्मृति मात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं विदुः' ॥

भगवान् के जो जो नाम हैं जैसे विष्णु गरुड़-ध्वज, पुण्डरीकाक्ष, हरि यह सब नाम मंगलों की खान हैं। जिनके हृदय में मंगलों के आयतन (स्थान) रूप श्री हरिः भगवान् विराजमान हैं उनका सर्व कार्यों में सर्वकाल मंगल ही होता है कभी अमंगल नहीं होता।

जिसके सुमिरन मात्र से अशुभ अर्थात् पाप नष्ट हो जाते हैं और शुभ अर्थात् पुण्यों का विस्तार होता है इसलिये उस ब्रह्म को तुम मंगल रूप जानो। ऐसे मंगल रूप भगवान् के नाम का सुमिरन करने वाला पुरुष अज्ञान की मोह निद्रा में कभी नहीं सोता किन्तु सदा जागता रहता है।

'या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागृति संयमी।
यस्यां जागृति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥'

जो अज्ञानी की अवस्था में सर्व भूत प्राणी जागते हैं वे ज्ञानवान् मुनि की रात्रि होती है और जिस भगवान् के प्रकाश की तरफ से संसारी जीव सोये हुए हैं उसमें संयमी जो सावधान हो कर नाम का सुमिरन करते हैं वे जागते हैं।

'प्रभु के सिमरन भव ना व्यापे'।

जो पुरुष भगवान् के नाम के सुमिरन में जागते हैं उनको किसी प्रकार का भय नहीं रहता है। भय उन्हीं को होता है जो भगवान् से विमुख हैं। जो भगवान् से विमुख है उसको अनेक दुःखों से संताप रहता है। और जो भगवान् के नाम का सुमिरन करता है उसको किसी दुःख से संताप नहीं होता है। भगवान् के नाम का सुमिरन साधु सन्तों के साथ मिल कर अधिक होता है क्योंकि उनके संग से भगवान् के नाम का ज्ञान होता है और श्रद्धा विश्वास बढ़ता है। जो परमेश्वर सर्व का मालिक है वह सन्तों के संग से ही मिलता है।

जो पुरुष भगवान् के नाम को श्रद्धा भक्ति और विश्वास पूर्वक सुमिरन करता है उसके लिये रिद्धि सिद्धि और नव निद्ध यह सब सिद्धियां आप ही आ प्राप्त होती हैं। भगवान् के सुमिरन करने से ज्ञान ध्यान और आत्म तत्व के अनुभव वाली बुद्ध होती है। भगवान् के सुमिरन करने वाले के तप तप और पूजा सब सफल होते हैं और द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। जिसने नाम का सुमिरन किया है उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया। 'स्नातं तेन समस्त तीर्थ सलिलं।' अन्त समय में नाम सुमिरन करने वाले को भगवान् अपना परं पद देदेते हैं जो सर्वोत्कृष्ट है। 'ज्ञानि-त्वात्मैव मे मतम्'। ज्ञानी को भगवान् अपना आत्मा रूप ही जानते हैं। इसलिये भगवान् का सुमिरन करना अपना कल्याण है। उसी का जीवन

सफल है जिसने नाम का सुमिरन किया है। भगवान् के नाम का सुमिरन वही कर सका है जिस पर वे अपनी कृपा करते हैं। जो भगवान् की कृपा के पात्र होते हैं वे सब के पूजने योग्य हैं।

कारण यह कि भगवान् का नाम सब से ऊंचा है ऐसे नाम को सुमिरन करने से नीच से भी नीच जीव का उद्धार होता है। संसार की सब तृष्णायें भगवान् के नाम सुमिरन से बुझ जाती हैं। और नाम के सुमिरन से जो कुछ जगत् है सब नजर में आजाता है। नाम सुमिरन करने से जम की त्रास नहीं होती। नाम के सुमिरन से सर्व इच्छाओं की पूर्ति होती है। भगवान् के नाम सुमिरन से मन का मैल दूर होता है और अमृत रूपी नाम हृदय में ठहर जाता है। भगवान सन्तजनों की रसना पर रहते हैं सन्त जन जो कुछ बोलते हैं वह सत्य होता है। जो भगवान् के नाम का सुमिरन करते हैं वे धनवान हैं और वे सनाथ हैं। जो भगवान् का सुमिरन करते हैं उन्हीं का जगत् में आना सफल है। और वेही सब से बड़े हैं। जो भगवान् का सुमिरन करते हैं वे किसी के मोहताज नहीं होते वे सर्व के राजा होते हैं। भगवान् के सुमिरन करने वाला ही सुखी रहता है। और उसका कभी भी विनाश नहीं होता है। भगवन्नाम का सुमिरन उसीने किया है जिस पर भगवान् ने आपही दया करी है। जो भगवान् का सुमिरन करते हैं वेही पर उपकारी हैं। उनको सदा ही बलिहारी है जो भगवान् का सुमिरन करता है वही मुख शोभा वाला है जिनसे भगवान् का सुमिरन होता है वे सदाही सुख से रहते हैं जो भगवान् का सुमिरन करते हैं अपने मन, इन्द्रियों को वेही जीत सके हैं जो भगवन्नाम का सुमिरन करते हैं संसार में उन्ही की निरमल रहन रीती है। जो भगवन्नाम का सुमरन करते हैं जिनका मन भगवान् के नाम सुमिरन में लगा है उनके आनन्द का कोई अन्त नहीं है। जो भगवान् का सुमिरन करता है भगवान् भी उसके पास में रहते हैं। सन्तों की संगति से उनकी कृपा से भगवान् के नाम का जो सुमिरण करते हैं उनके ही पूरे भाग्य हैं। भगवन्नाम सुमिरन करने वाले के सर्व कार्य पूरे होते हैं। और वह अपने मन में कभी नहीं झुरता है कि मेरा यह काम नहीं हुआ। भगवान् के सुमिरन से वाणी हरि गुण गान करती हुई अपने अपने सहज स्वरूप में समाजाती है। भगवान् के सुमिरन से मन अचल होजाता है। और हृदय का कमल खिल उठता है। भगवन्नाम के सुमिरन से सर्व प्रकार के अनहद बाजे बजते हैं भगवान् के नाम सुमिरन का सुख अनन्त और अपार होता है। ऐसे नाम को वोही सुमिरन करते हैं जिनपर भगवान् का अति अनुग्रह है। हरि के सुमिरन से ही भक्ति उत्पन्न होती है और हरि सुमिरन से ही वेद उदय हुए हैं। हरि के सुमिरन से ही सिद्ध और जति तथा बड़े २ दानी हुये हैं। हरि सुमिरन से नीच से नीच भी चारों कूटों में विख्यात होजाते हैं। हरिके सुमिरन से ही शेष भगवान ने यह धरती धारण कर रक्खी है। इसलिये उसी हरि के नाम का सुमिरन करना चाहिये जो सब कार्यों को पूरा करने वाला है। हरि के सुमिरन मात्र से ही यह सर्व आकार उत्पन्न हुआ है। हरि नाम के सुमिरन में आप जो निराकार भगवान् वह विराजमान है। यह अपनी कृपा करके जिसको आपही जनाना चाहता है वही जानता है जिसने गुरुमुख होकर भगवान् के नाम का सुमिरन किया है उसी ने भगवान् को पाया है।

वैदिक और पौराणिक धर्मगाथायें।

(ले० श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, परिव्राजक)

'जन्तु'

महाभारत, वनपर्व (१२७-१२८ अ०)
"भयंकर महायज्ञ":-१-(कथाभाग)

यह कथा महाभारत वनपर्व की है। 'सोमक' नाम का एक राजा राज्य करता था, उसके एक ही नहीं, एक सौ रानियां थीं। पर दुर्भाग्य वश उसके एक भी लड़का नहीं। जब वह अत्यन्त वृद्ध हो गया, उसकी अन्तिम अवस्था में किसी एक रानी के गर्भ रहा, और सौभाग्य वश वह रानी एक लड़के की मा भी हो गयी। उसी लड़के का नाम रखा गया "जन्तु"! सभी रानियां 'सन्तानोत्पत्ति' की आशा से 'निराश' हो चुकी थीं, अतएव यह एक लड़का उन सभी रानियों के 'गलेका हार' हो गया। मानों उस छोटी रानी ने सबों की साध पूरी कर दी। सभी अपने को पुत्रवती ही समझतीं और इस एक पुत्र का लालनपालन बड़े ही 'प्रेम पूर्वक' करतीं। 'सपत्नीक भाव' का बिन्दु विसर्ग भी न था! एक दिन उस 'जन्तु' के चींटी काट गयी। बच्चा 'शिशु" अचानक रोने और चिल्लाने लगा, रानियाँ जितनी ही अधिक उसके शान्त करने की चेष्टा करतीं, उतना ही अधिक वह और भी रोने और चिल्लाने लगा। रानियां भी घबरा उठीं और प्रेम विह्वल हो स्नेह भरे करुणापूर्ण हृदय से वह सौ रानियां भी, अत्यन्त करुणा पूर्ण स्वर में रोने लग गयीं। उनके इस करुण क्रन्दन' से 'राजप्रासाद' सहसा गूंज उठा! किसी घोर 'अनिष्ट' की आशङ्का से राजा भी, 'राज्य-परिषद्' से, पुरोहित, आचार्य्य और अमात्य वर्गों के साथ 'घटनास्थल' पर निवास में आ पहुंचा। निदान पता लगा कि बच्चे के सिर्फ एक चींटी ही लड़ गयी थी! पर 'एकसौ' मातायें भी, उस इकलौते (एक ही) पुत्ररत्न का यह छोटासा अति सामान्य कष्ट भी न सह सकीं! राजा ने सोचा! इन एक सौ रानियों के बीच में, एक पुत्र का होना, न होना दोनों बराबर ही है! क्या ठिकाना, यह 'एक' ही 'रत्न' रहे या न रहे। इस भावी 'अनिष्ट' की आशंङ्कामात्र ही राजा के लिये, मानो 'पुत्र शोक' का हेतु हुआ! निदान, राजाने अपने 'धर्म्मामात्यों' से पूछा और इस बात की 'अभिलाषा' प्रगट की, कि यदि किसी 'पुत्रेष्टियज्ञ' से उसकी एकसौ रानियों के एक एक पुत्र भी हो जाय तो उस 'यज्ञ के लिये चाहे 'सर्वस्व अर्पण' कर देना ही क्यों न पड़े यह इसे पूरा अवश्य करेगा।

राज्य के 'धर्म्म-महामात्यों' ने निश्चय किया कि यदि राजा अपने एक मात्र पुत्र 'जन्तु' का ही "बलिदान' इस 'पुत्रेष्टियज्ञ' में कर सके तो उसकी यह इच्छा भी पूरी हो सकती है और सभी रानियों का पुत्रवती हो जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है।

राजा का एक मात्र पुत्र "जन्तु" जीते जी,

इस "पुत्रेष्टि यज्ञ' की 'प्रज्ज्वलिताग्नि' में जलाया जायगा, और उस यज्ञ कुण्ड से जन्तु के जीते जी जलने पर जो 'धूम' (धूआं) उठेगा, उसके सूँघते ही रानियां गर्भवती और पुत्रवती भी हो जायंगी, इसमें सन्देह या अविश्वास का कोई भी कारण नहीं। उस पुत्रेष्टियज्ञ' की महिमा ही ऐसी थी। धर्म्मामात्यों ने यह भी कहा, कि छोटी रानी के गर्भ में, फिर भी 'जन्तु' ही आयेगा और इसके प्रमाण स्वरूप, एक मात्र उस नवजात शिशु के 'मुखमंडल' पर ही 'सुवर्ण' की एक अभूतपूर्व विचित्र 'कान्ति' (आभा) रहेगी! राजा ने इस विचित्र 'पुत्रेष्टियज्ञ' का करना स्वीकार कर लिया और अपने 'राज्य पुरोहित' को आज्ञा दी कि, राजा के प्रतिनिधि रूप में वे अविलम्ब ही, इस 'यज्ञ' का 'श्री गणेश' किसी शुभ मुहूर्त्त में करदें।

'राजाज्ञा' की देर थी! शुभ मुहूर्त्त में 'यज्ञ' आरम्भ हो गया! वह 'शुभ मुहूर्त्त या 'भयंकर काल' भी आ गया जब राजा का एक मात्र पुत्र 'जन्तु जीता जी, उस 'अग्नि कुण्ड' में हवन कर दिया जायगा! जीते जी, प्रज्ज्वलित 'अग्नि कुण्ड' में एक मात्र "राज कुमार' का 'हवन' कर देना, अत्यन्त घोर निर्दयता पूर्वक जला दिया जाना इसकी 'कल्पना' भी 'रानियों के कोमल 'प्राण' और मातृसुलभ' हृदय हर लेने के लिये पर्याप्त थी। 'रानियों' ने अपने एक मात्र 'जीवन सर्वस्व, हृदयधन, 'पुत्ररत्न' लाल को अपनी गोद में चिपका लिया, वे उसे 'बलिदान' करने के लिये, तैयार नहीं थीं! परन्तु उस कठोर, निर्दय और पाषाणहृदय 'राज्यपुरोहित' राजा के प्रतिनिधि ने नहीं माना, उसने 'बलप्रयोग पूर्वक' राजकुमार को छीन लिया! और अपनी "निर्दयतापूर्ण कर्त्तव्य परायणता' अथवा वज्र से भी कठोर, 'पाषाण हृदयता नहीं नहीं सर्व साधारण के लिये निर्जीव हृदय होनता' का परिचय देता हुआ, एक मात्र 'राज कुमार' की ही 'पूर्णाहुति' उस अति विकराल रूप धारण किये हुए, प्रदीप्त प्रज्ज्वलित अग्नि-कुण्ड में निम्नलिखित पूर्णाहुति मंत्र से कर दी।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" ॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

अर्थात्—वह (परिपूर्ण अव्यक्त ब्रह्म) पूर्ण है। (व्यक्त-दृश्य जगत्) पूर्ण है, पूर्ण (अव्यक्त) से पूर्ण (व्यक्त, जगत्) की उत्पत्ति हुई, 'पूर्ण' पूर्ण से निकाल लिया गया, शेष "पूर्ण' ही बच रहा!

गणितज्ञों को भी तो इसी बात का चक्कर है कि शून्य से शून्य के निकाल लेने पर, शेष 'शून्य' ही रह जाता है! यह 'शून्य' नहीं, शून्य ही पूर्ण है, अतएव 'गणित' का भी यही अन्तिम सिद्धान्त है कि (१-१-१) अथवा (०-०-०) वा (पूर्ण-पूर्ण-पूर्ण) अस्तु!

क्या हम भी यह मानलें कि इसी प्रकार यह जीव रूप राजकुमार, भी फिर ब्रह्म रूप 'राजकुमार हो जायगा।

हां, रानियां गर्भवती हुईं, पुत्रवती हुईं और एक शत पुत्रों की मातायें भी बनी। एक मात्र राजकुमार 'जन्तु' (जन्म?) भी, अपनी मा का 'लाल' बना रहा!

समय पाकर, राजा की मृत्यु हुई! राज्य पुरोहित, राजा की मृत्यु के पहले ही कराल काल का कौर हो चुका था। राजा की 'आत्मा' भी यमलोक में पहुंची। वहाँ राजा ने देखा कि उसका राज्यपुरोहित, रौरव नरक की अति भयंकर विकराल रूप धारिणी प्रज्ज्वलित 'कालाग्नि' के ही

कालानल में निर्दयता पूर्वक भी जलाया जा रहा है! 'राजा' की आत्मा को 'यमलोक' की यह क्रूर कर लीला देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ! आश्चर्य चकित हो उसने इसका कारण अपने 'पुरोहित' की 'आत्मा' (जीवात्मा) से ही पूछा। राज्य पुरोहित ने उत्तर दिया। 'राजन्! यह सुमधुर फल है तुम्हारे हित किये गये 'पुत्रेष्टियज्ञ का!' राजा राज्यपुरोहित की यह बात सुनते ही 'विकल' हो उठा और अपने 'पुण्य' के ही प्रबल प्रताप से, संयमिनी पुरी के राजा 'यमराज' के पास पहुंचा और अपने 'राज्य पुरोहित' को इस 'रौरवाग्नि' से मुक्त करने के लिये 'अंजलिबद्ध' हो कर विनीत भाव से यह बोला 'जीवों के शुभाशुभ कर्म्मों के उचित फल देने हारे, संयमिनी पुराधिपति यमराज! राज्य में राजाज्ञानुसार ही शुभाशुभ कर्म करने वालों का 'फल स्वयं राजा को भोगना चाहिये अथवा राजाज्ञा की पालन करने वाली प्रजा को? 'यमराज ने उत्तर दिया' राज्य में राजा की राज्याज्ञा ही सर्वोपरि है, अतएव राजा के आज्ञानुसार कर्म करने वालों का शुभाशुभ फल भी राजा को ही भोगना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अस्तु! उक्त पुत्रेष्टि यज्ञ के फल स्वरूप 'अहिंसा परमो धर्म्मः' इस धर्मनीति की अवहेलना करने के कारण, राज्य पुरोहित के साथ राजा को भी कुछ कालतक उस 'कालानल' का दण्ड सहना पड़ा। राज्य पुरोहित ने ही राजा को पुत्रेष्टियज्ञ के लिये प्रेरित किया था और वह स्वयं राजा का 'प्रतिनिधि' भी बना था। अतएव 'राज्य पुरोहित' को भी यह 'यमदण्ड' सहना ही पड़ा। उपरान्त अपने इस 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' रूप हिंसात्मक 'पुत्रेष्टियज्ञ' का फल भोग कर, राजा और राज्य पुरोहित दोनों ही, अपने पुण्य कर्म्मों का (शुभान् कामान्) फल भोगने के लिये। यमलोक से स्वर्गलोक में भेज दिये गये!

२ '(आध्यात्मिक) रहस्य भाग'

प्रिय पाठको!

आइये, अब तनिक इस पौराणिक गल्प वा धार्म्मिक गाथा के आध्यात्मिक अर्थ वा 'रहस्य' के समझने की चेष्टा कीजियेः-

पाठको यदि हम यह मानलें कि (१) 'सोमक' नाम 'सोम' (चन्द्रमा) का, (२) राजा की अत्यन्त वृद्धावस्था रूप 'वया वाद्धिक्य" मनुष्य वा मानव जीवन का अन्तिम 'ज्ञान' (ज्ञान वार्द्धिक्य वा ज्ञानवृद्धि) ही उसकी पुत्र प्राप्ति की इच्छा (३) पुत्रेष्टियज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि ही 'आत्मा' स्वरूप 'स्वदेहं' आत्मानं 'अरणिं' कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ज्ञान निर्मंथनाभ्यासात् पाशं दहति पण्डितः" की 'अरणि' वा वैदिक कर्मकाण्ड की आहवनीय अग्नि (ऐतरेय ब्राह्मण) और (४) राजकुमार रूप नवजात शिशु 'जन्तु' की पूर्णाहुति ही वैदिक 'जातग्नि' रूप 'उत्तरारणि' (५) एक सौ रानियां, उस सोमक (सोम वा चन्द्र) रूप राजा (जीव) की विविध सात्विक वृत्तियां (६) छोटी रानी सभी सात्विक वृत्तियों में सर्वोपरि 'श्रद्धा'! कौषित की उपनिषद् में भी, ब्रह्मलोक में रहने वाली 'जीवात्मा' (आत्मा) की सेवा वा वा प्रसन्नारूप 'आनन्दभोग के लिये (जीवो ब्रह्मैव ना परः) एक शत अप्सराओं का उल्लेख आया है। (कौ० उ०-१-४) (८) जन्तु' के बलिदान स्वरूप एक शत पुत्रों की प्राप्ति एक ही आत्मा का छांदोग्योपनिषद् वर्णित 'शतधा' रूप हो जाना, यथाः-

'स एकधा भवति, त्रिधा भवति, पंचधा सप्तधा नवधा चैकादशः स्मृतः शतंच दश चैकश्च सहस्राणि विंशति

छांदोग्य, ७।२६।२) ईशावास्योपनिषद् में भी कहा है कि आत्मा एकही है और एक होने पर भी अनेक है। इसलिये कि वह सभी जीवों को 'आत्मा' रूप में ही देखता है:-

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते" (ईशा० श्लो० ६)

६. और वह 'सुवर्ण की कान्ति' वा पुनर्वार जन्म ग्रहण किये हुए "जन्तु" के मुख मंडल पर 'सुवर्ण' का चन्द्र, तैत्तिरीयोप निषद्-संहिता ३,२,१) का 'अमृतं वै हिरण्यम्" स्वरूप अमृत तत्व है! हम देखते हैं, कि आत्म स्वरूप 'अमृततत्व' वा आत्मा की प्राप्ति वा आत्मदेव इष्टदेव रूप ईश्वर वा भगवान् के दर्शन के लिये जब यह सोमक (सोम वा चन्द्र) रूप 'जीव' अपनी मानवीय आयु वा मनुष्य जीवन का अधिक भाग, कर्मकांड रूप गृहस्थाश्रम के ही विविध यज्ञयाग आदि निष्काम कर्मों में बिता देता है तभी वृद्धावस्था वा वयोवाहक्य के समय ज्ञानकी वृद्धि के ही साथ साथ आत्मज्ञान रूप पुत्र की इच्छा उत्पन्न होती है, और निष्काम कर्मों के ही सहारे चित्तशुद्धि रूप आत्मानुभव आत्मशुद्धि रूप 'जन्तु' रूप आत्मज्ञान नामक पुत्र की प्राप्ति करता है। और इस आत्मज्ञान के सहारे मनोनाश वासनाक्षय के होजाने के कारण उसे अपने पुत्ररूप 'आत्मज्ञानप्राप्ति' का भी (मोह) वा माया का आवरण दोष नहीं रह जाता वह इसे भी आत्माकी प्रज्वलित अग्नि में 'होम' करता हुआ सारी 'शत्वृत्तियों' (शत रात्रियों) की अनुनय विनय की भी पर्वा न कर, अपने को एकमात्र श्री सद्गुरु-चरण रूप 'राज्यपुरोहित' 'गुरुशंकररूपिणं' भगवान शिव वा ईश्वर के हाथ सौंप देता है और "प्रारब्धाय समर्पितं स्वयपुरित्येषा मनीषा मम" एकमात्र प्रारब्ध भोग के नाते ही शरीर धारण करता हुआ "जीवन्मुक्ति" की स्थिति में पूर्ण 'आत्मसमर्पण' वा आत्मनिवेदन रूप इस आध्यात्मिक (पुत्रेष्टि) यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि (ब्रह्मसाक्षात्कार की ब्रह्मानुभूति) में अपने इस आत्मज्ञान रूप जन्तु जैसे राजकुमार की भी पूर्णाहुति कर देता है और परिणाम स्वरूप "आत्मानं अरणिं कृत्वा, प्रणवं चोत्तरारणिम् ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्" तथा "पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते" अथवा 'पूर्णस्य पूर्णमादाय' के होने पर भी 'पूर्णमेवावशिष्यते' रूप 'अमृततत्व' एकधा (जन्तु वा आत्मा) को उपर्युक्त श्रुतिसिद्धान्त के अनुसार 'शतधा' रूपमें एकमात्र अपनी छोटी रानी 'श्रद्धा' के ही कारण प्राप्त करता है। तभी तो (यो यच्छ्रद्धः स एव सः) जो जैसी 'श्रद्धा' करता है अथवा जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है जीव "सत्यसंकल्प" है। क्रतुमय है। (देखो छांदोग्योपनिषद् ३।१४। सत्यधब्राह्मण ४।१) "कर्मफल" भोगना अनिवार्य है, अतएव "सकामकर्म" के नाते राजा और राज्य पुरोहित दोनों को ही शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना अनिवार्य होता है और यद्यपि शिवरूप गुरु, वा पुरोहित स्वयं 'ज्ञानस्वरूप' है तथापि "नरलोक" का अध्यक्ष स्थानीय भूतपति पशुपति वा ईश्वर होने के नाते "कर्माध्यक्ष" के रूपमें जीव मात्र के ही पापों को हर लेने अथवा ज्ञानाग्नि में जला देने के लिये स्वयं भी अपनी "ज्ञानमयी तपस्या" रूप प्रज्वलित अग्नि में "त्र्यम्बक" वा संहारात्मक रुद्र रूप से 'प्रज्वलित' हो जल उठता है। यह इस पौराणिक कथा के आध्यात्मिक भाग का रहस्य है। "संशयात्मा विनश्यति"

हरिः ॐ तत्सत्! ॐ

मनोभावना

[रचयिता 'श्री दिनेश"]

है इस विशाल उजड़े जीवन की गाथा अभी सुनानी।
हृदय धाम पड़ना मेरे जीवन की करुण कहानी॥
जी कहता है 'इस जगती से अपना नाता तोड़ चलो।
जहाँ शान्ति शोभा पाती हो उस नगरी की ओर चलो॥
एकमात्र छलना-सुख तृष्णा ही इस दुनियाँ का सुख है।
क्षणिक सुखों के पा लेने पर मिलता केवल दुख है॥
नहीं प्राप्य मानव-पृथ्वी पर सच्चा सुख का प्याला।
महामोह विष का पीकर के बनते हो मतवाला'॥
पुनः रोक कर मन कहता है 'कायर मुझे न छोड़ो'।
दुनियाँ की मृग तृष्णा कहती 'मुझसे मुख मत मोड़ो'॥
उधर विश्व करतार खींचता, इधर खींचती माया।
उधर पिता जगदीश खड़ा है, इधर उसी की जाया॥
ऐसी विकट स्थिति में जीवन को घेर रहा दुखघन।
डूब रहा हूँ दुःख समुद्र में कैसा है पापी जीवन॥
अब नहीं सान्त्वना नीर कभी मिल सकता है इस भव में।
भाग्य यही इठला कर कहता तुम ना रहो रनरव में॥
नहीं सहा जाता है अबतो इस जगती को छोड़ चलूं।
पर इसके पहले बतलादो, किस अनन्त की ओर चलूं?

तप

[ले० पं० पारसनाथशर्मा परमार्थी]

रियाज़त को तप कहते हैं कहा भी है।

कृतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो
दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥ तैत्तिरीय अ० १० अनु० ८

अर्थात् यथार्थ शुद्ध भाव से सत्यमानना सत्य बोलना सत्य करना मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना। इन्द्रियों से तथा मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्म युक्त कर्मों का नाम तप है। मनुस्मृति में लिखा है:-

अस्मिन् कर्मण्यस्य कृते मनसः स्याद्व्यलाघवम्।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद् यावत्तुष्टिकरं भवेत्॥
तपो मूलमिदं सर्वं दैव मानुषकं सुखम्।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोन्तं वेददर्शिभिः॥

इस (पाप करने वाले) के मन का जिस कर्म के करने में भारीपन हो। उसमें इतना प्रायश्चित्त करे जितने से इसको तुष्टि करने वाला हो जाय। इस सब देव मनुष्यों के सुख का आदि मध्य और अन्त, वेद के जानने वाले पण्डितों ने तप को ही कहा है। अ० ११ श्लो० २३३। २३४

और भी एक स्थान पर आया है:-

ब्रह्मचर्यं जपो होम काले शुद्धान्नभोजनम्।
अरागद्वेष लोभादय तप उर्ध्वं स्वयंभुवा॥ 11-२४४

यह किसी २ मनुस्मृति में है। इसका यह अर्थ है, ब्रह्मचर्य्य, जप, होम, समय पर शुद्ध थोड़ा भोजन, रागद्वेष और लोभ का त्यागना यह ब्रह्मा ने

तप कहा है बहुत से लोग तप को निम्न प्रकार कहते हैं।

१. पञ्चाग्नि तप अर्थात् चारों दिशाओं में आग जला कर ऊपर से सूर्य्य की तपत द्वारा ग्रीष्मऋतु में शरीर का तपाना।

२. जल तप अर्थात् सरदी में रात्री को तालाब या कोहड आदि के जल में प्रवेश करके प्रातः सूर्य्योदय पर बाहर निकलना।

३. धूनी रमाना।

४. शरीर को नंगा रखना और रात्रादि लपेटना।

५. भूखा रहना और फल फूल आदि खाना यद्यपि यह शारीरिक तप है परन्तु जब तक इनसे किसी प्रकार की उन्नति और सुख की प्राप्ति न हो शरीर को कष्ट देना है। वास्तविक तप शब्द के अर्थ या तप की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। "धर्म के कार्य्य में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों का सहन करना" क्योंकि आत्मा की उन्नति और प्राप्ति में शरीर साधन है। और जबतक शरीर को इस योग्य न बनाया जावे कि वह सरदी, गरमी, भूख प्यासादि हर प्रकार की कठिनाइयों को सहन कर सके तब तक आत्मा की प्राप्ति असम्भव है। अब मैं आपको बतलाता हूं कि शारीरिक तप क्या होता है।

शारीरिक तप "ब्रह्मचर्य्य" है। हम किस प्रकार तप करें जिससे हमें वीर्य रक्षा में सहायता मिले। यहां हम सबसे प्रथम भोजन का प्रश्न लेते हैं। इन्द्रियों के संयम किये बिना वीर्य रक्षा नितान्त असम्भव है।

भोजनमें नमक एक ऐसी वस्तु है जो इसे स्वादिष्ट और मनोरञ्जक बनाती है। अतः इसको छोडना अत्यन्त ही कठिन और मन को वश में करने वाला कार्य्य है। अतः पहले इसी पर बताया जाता है।

भारतवर्ष में आत्मिक शक्तिशाली पूर्वजों और बड़े २ मनुष्यों तथा साधुओं ने यदा कदा नमक खाने का कई वर्ष अनुभव किया है कि इस का त्याग करना आत्मिक शक्ति को बढाता और शारीरिक दुर्बलता को दूर करता है। महात्मा गान्धी जो इस समय दुनियां में एक महान आत्मा हैं नमक नहीं खाते। किन्तु घरना यह है कि उन्होंने ३० वर्ष से नमक खाना छोड रखा है। इस बात का वर्णन भी अत्यन्त आवश्यक है कि पश्चिमी वैज्ञानिक अब नमक को यथारुचि खाने की अपेक्षा उचित मात्रा में खाने का आदर करते हैं। प्रमाण के लिये यहां कतिपय डाक्टरों की राय लिखते हैं:-

डाक्टर मोर्स साहिब लिखते हैं कि नमक का बरतना मनुष्य को शीघ्र वृद्ध करदेता है और यह रगों की भीतर की शक्ति को नाश करता है। अगर मानुषी पाचन शक्ति का पूरा कट्टर शत्रु है तो केवल नमक ही है। यह एक ऐसी वस्तु है कि इसके काम में लाने से हमारा उदर अन्तड़ियां गुर्दे इत्यादि विकृत हो जाते हैं।

डाक्टर लपवा साहिब नमक को बतने के बारे में कहते हैं कि यह सब को विदित है कि सर्व पशु पक्षी तथा हिंसक व मांस खाने हारे जीव अपना शक्ति स्थित रखने के लिये अपने भोजन में नमक मिलाने की आवश्यकता नहीं रखते। इसकी अपेक्षा हम यह भी जानते हैं कि संसार में ऐसी जातियां भी हैं जो केवल चिरजीवी भोजन अर्थात् दूध और मांस या फल पर अपना समय व्यतीत करते हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि या तो ये लोग लवण को जानते ही नहीं। या लवण से घृणा करते हैं। सभ्य जाति को नमक की आवश्यकता और

उसका घर्तना उनके स्वभाव तथा रहन सहन की रीति पर निर्भर है। अत्यन्त आवश्यकता पर नहीं अतः इसका खाना बिना किसी प्रकार की हानि के कम किया जा सकता है।

भोजन सादा और सात्विक और मित होना चाहिये। मीठे फल और गाय का दूध बहुत उपयुक्त भोजन हैं। मूली गाजर इत्यादि शाक यदि कच्चे खाये जायं तो ज्यादा उपयोगी होते हैं। हम को अधिक चबाने का अभ्यास करना चाहिये। भोजन खूब चबा कर करना चाहिये और दान्तों को दान्तुन कुल्ले आदि से साफ रखने चाहियें। जो अन्न ठीक रीति से नहीं खाया जाता वह बदहजमी पैदा करता है। जिससे दान्तों की बीमारियां पैदा होती हैं।

ब्रह्मचर्य का दूसरा साधन व्यायाम है यह उचित मात्रा में हर रोज जरूरी है। उचित मात्रा में व्यायाम करने से हमारा वीर्य हमारे शरीर को पुष्ट करने में लगता है। यदि व्यायाम न किया जावे तो वीर्य शरीर में और मनमें बेचैनी पैदा कर देता है। और फिर नाना प्रकार के उपद्रवों की सम्भावना हो जाती है।

यदि अति अधिक व्यायाम किया जावे तो इच्छा शक्ति कमजोर पड़जाती है और इससे वीर्य की हानि होती है। इस लिये मध्यम मार्ग का उत्तम है।

ब्रह्मचर्य्य का तीसरा साधन है निद्रा। यह भी उचित मात्रा में होनी चाहिये, जरूरत से कम सोना तप नहीं भूल है। हां जरूरत से अधिक सोना, हानि कारक है। सुस्ती का मुकाबला करना जल्दी सोना जल्दी उठना अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त में जागना यह तप है। एक उर्दू कवि ने कहा है:—

रात को सोना वक्त से सुबह को उठना शिताब।
इल्म और इज्जत बढ़ाये अक्ल को दे आबोताब॥

जिस समय आलसी सोया होता है उसी समय तपस्वी उठ कर अपने नित्य कर्म में लगा होता है। इसके अतिरिक्त भद्र देखना भद्र सुनना, भद्र कार्य्य करना यह सब ब्रह्मचर्य में सहायक है। वेद भगवान् का उपदेश है कि:—

'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः
यजु अ० २५ मन्त्र २१

आग्रह

[लेखक:- कविवर शिवलहरी जी भटनर]

सहज सहज सहज चलो, राम प्राण प्यारे।
सपदि हम न चलि सकत हैं, सङ्ग में तिहारे ॥ सहज ॥
दुपहर को दुसह घाम, स्वेद आयो तनुहि राम।
चरण छिदे सुखधाम, कण्टकों के मारे ॥ सहज ॥
राह के कुछ कुञ्ज, मालती तमाल पुञ्ज।
कूजित लखित भ्रमर गुञ्ज, थामहीं निवारे ॥ सहज ॥
कुञ्ज में विराजो अब, प्यार करौंगी मैं तब।
कण्टकन्हि निकारी सब, चरण आपि धारे ॥ सहज ॥
सुन कर प्यारी के बैन, आयो जल कमल नैन।
'लहरी' लखहि सुख दैन, कुञ्ज में विहारे ॥ सहज ॥

* सदुपदेश *

(ले० श्री राम सेवकसिंह "श्याम" (पटना)

जहां विश्वास है, वहीं प्रेम है। जहां प्रेम है, वहां शान्ति है। जहां शान्ति है, वहां ईश्वर हैं। और जहां ईश्वर है, वहां सब इच्छाएं अपने आप परितृप्त हैं। अज्ञात

× × × ×

रे सौंदर्य्य-मानवरूप, तू अपने आपको प्रेम के दर्पण में देख, उसी के अन्दर अपनी शोभा देखने की चेष्टा कर शीशे के दर्पण की मिथ्या प्रशंसा का भरोसा मतकर। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ

× × × ×

जो आत्मा को अमर नहीं जानते वेही मृत्यु से कंपा करते हैं। महात्मा गांधी

× × × ×

इन्द्रियों के बंधन से छूट जाना ही धर्म कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द

× × × ×

जो उपकार जताने का इच्छुक है, वह द्वार रट खटाता है। जिसे प्रेम है, उसके लिये द्वार खुला है। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ

× × × ×

परमात्मा पूजा का नहीं वरन प्रेम का भूखा है। स्वामी दयानन्द

× × × ×

जिस व्यक्ति के मन में प्रेम तथा शान्ति का अभाव है, वह चाहे जैसी अवस्था में रहे, सुख नहीं पा सकता। अज्ञात

× × × ×

कर्त्तव्य में प्रमाद न करना ही सफलता की कुंजी है, और उसी पर परमात्मा की कृपा होती है। आलसी और कर्त्तव्य विमुख लोग उसके (परमेश्वर के] योग्य नहीं। महात्मा गांधी

× × × ×

चाहे जैसी प्रतिकूल, विकट और विपत्ति की अवस्था में भी जो न घबरा कर अपने साधु प्रयत्न को जारी रखता है और भगवान् से प्रार्थना करता है, उसकी प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं। महात्मा गांधी

× × × ×

प्रेम केवल सांसारिक जीवों पर ही विजयी नहीं होता, वरन मृत्यु को भी अपने वश में करलेता है। अज्ञात

परमात्मा की भक्ति करने से मानव अन्तःकरण का आभ्यन्तरिक अन्धकार दूर हो जाता है, और प्राणों में राम चरित चिन्तामणि की चकाचौंध उठ खड़ी होती है। कविवर त्रिदण्डी

× × × ×

मेरा सो मेरा नहीं, ऐसा निश्चयकर, केवल कर्त्तव्य मानकर किसी भी कार्य को करना, इसी को निर्ममत्व कहते हैं। इसी निर्ममत्व से अनासक्ति की उत्पत्ति होती है। और अनासक्ति से निष्काम बुद्धि का उदय होता है। महात

× × × ×

जीव मात्र को बिना परमेश्वर के चरणों में अपने को सर्वार्पण कर, उनमें अटल श्रद्धा पूर्वक भक्ति किये हुए···भक्ति का सुख मिलना असम्भव है। महात्मा गांधी

× × × ×

भक्ति राजयोग है, इसका कार्य्य ईश्वर में आसक्ति है। यह उपासना का सहज मार्ग है, हृदय में बसे तो सहज न बसे तो विकट है। महात्मा गांधी

× × × ×

मनोमीन हो जाय मग्न हरि, रहे न कूल किनारा। स्वयं शान्त हों सब तृष्णायें, घट भर जाये हमारा॥

कविवर मैथिली शरण जी 'गुप्त'

× + × ×

मोह का त्याग

(ले० श्री लोकनाथ गुप्त ट्रेनिङ्ग स्कूल सीतापुर)

सत्य है मोहका त्यागना अत्यन्त दुर्गम एवं दुस्तर है, और इसी के जाल में पड़कर संसारी मनुष्य नष्ट होरहे हैं। इसी विषय का एक प्रसंग निम्न लिखित है, आशा है कि सज्जन भक्तगण अवश्य कृपा पूर्वक पढ़ेंगे।

एक ब्राह्मण के एक पुत्र था जो अपने गुरु के पास विद्या पढ़ता था और उन्हीं के आश्रम में रहता था, इसका नाम सत्यदेव था। सत्यदेव योगाभ्यास में भी निपुण थे परन्तु मोहरूपी जाल से मुक्त न थे, एकबार गुरु देवने कहा 'बेटा सत्यदेव तुम अपने माता, पिता, भाई और स्त्री आदि से अधिक प्रेम क्यों करते हो" सत्यदेव ने कहा गुरुजी मेरे माता पिता भाई और स्त्री इत्यादि मेरा अधिक प्रेम करते हैं यहाँ तक कि जान देने के लिये भी तैयार हैं।

गुरु-नहीं बेटा ऐसा नहीं है यदि तुम मर जाओ तो तुम्हारे कुटुंबी क्या करेंगे?

स०-महाराज मेरे पिता, माता और स्त्री तो जी नहीं सके। हमारे वियोग का दुःख नहीं देख सके।

गुरु–बेटा ऐसा कदापि नहीं होगा केवल देखने के सगे हैं यदि तुमको विश्वास न हो तो परीक्षा लेकर देखलो।

स०–मैं क्या परीक्षा लूँ आप स्वयं परीक्षा लेलीजिये।

गुरु–अच्छा तो कल परीक्षा लूँगा। तुम आकर मृतक के समान लेट जाना और चरित्र देख लेना, मैं परीक्षा करलूँगा।

सत्यदेव ने सहर्ष स्वीकार करलिया और दूसरे दिन वही किया जो गुरुजी ने बताया था सत्यदेव मृतक के समान पड़रहा और माता, पिता, स्त्री, भाई इत्यादि रोने पीटने लगे, थोड़ी देरमें गुरु जी भी आगये, इन्होंने सबको धैर्य दिया और कहा कि एक कटोरा दूध और शक्कर लाओ तो पुत्र अच्छा होजाय। माता ने दूध और शक्कर ला दिया, गुरुजी ने उस कटोरे को सत्यदेव के ऊपर फेरकर कहा:–

गुरु–(माता से) लो माता यह दूध तुम पीलो तो लड़का जी उठेगा मगर तुम मर जाओगी

माता–नहीं महाराज, पुत्र के लिये मैं अपना प्राण क्यों देदूं ऐसे पुत्र तो मेरे और भी होंगे। पर यह जीकर मेरा क्या करेगा इसका जीना और न जीना बराबर है।

गुरु–(पिता से) लो महाराज तुम इसको पीलो तुम्हारा पुत्र बहुत प्यारा था।

पिता–गुरुजी मेरे पीने से नहीं पिया जायगा मैं अपना प्राण क्यों देदूं अगर मैं मरजाऊंगा तो यह जीकर मेरा क्या उपकार करेगा?

गुरु–(भाई से) लो बेटा तुम पीलो तुम्हारा भाई अच्छा होजावेगा।

भाई–गुरुजी भाई के लिये मैं क्यों प्राण देदूं मैं नहीं पी सका मेरे मरने से भाई मेरा क्या उपकार करेगा?

गुरु–(स्त्री से) ले पुत्री तू पीले तेरा स्वामी तुझको बहुत प्यारा था।

स्त्री–गुरुजी मैं पीकर क्या बनाऊंगी अगर मैं मरजाऊंगी और स्वामी जी जायगा तो मेरा क्या लाभ होगा इससे मैं अपने पिता के घर रहूंगी तो अच्छा है।

जब गुरु जी सबसे बूझ चुके तो कहा "क्या मैं पीलूँ" तो सबने प्रसन्न होकर कहा हाँ आप पीलीजिये ऐसा सुनकर गुरुजी ने दूध पीलिया और कहा बेटा सत्यदेव उठो। सत्यदेवने उठकर गुरु जी को प्रणाम किया और कहा महाराज आज मुझे विश्वास होगया कि संसार में कोई किसी का सगा नहीं है। सत्यदेव उसी दिन से मोह छोड़ कर विरक्त होगये।

प्यारे पाठकगण! आपलोगों को भी विदित होगया होगा कि मोह क्या वस्तु है? मोहसे हम कैसे नष्ट होते हैं। प्यारे सज्जनो संसार के नीच से नीच कर्म्म मोह कराता है। पाप के गढ़े में मोह गिराता है, धर्म्म पथ पर चलने से मोह रोकता है, अर्थात् हमारे शुभ कर्म्मों में बाधा डालने वाला मोह है। इस दुष्ट मोह के कारण हम उन्नति नहीं कर सके। इसलिये हमारा प्रथम कर्तव्य मोहका त्यागना है। जबतक मोह दूर न होगा हम शुभ कर्म नहीं करसके। अतः सर्व सज्जनों से विनय है कि जहां तक होसके मोहको त्याग करें।

भजन

फूल चुनने को गुलशन में आया था मैं,
दिल में कुछ भी था खौफोखतर ही नहीं।
काले विषधर ने उंगली में मारा है फन,
बाकी मरने में अब कुछ कसर ही नहीं ॥टेक
मेरी आवाज सुनता हो कोई अगर,
मेरी माता पै जाकर वह करदे खबर।
फैला जाता है सारे बदन में जहर,
कोई गमख्वार आता नजर ही नहीं ॥ १ ॥
मुझे मरने का दिल में है बिल कुल न डर,
सभी मरते हैं कोई रहेता अमर।
हाय मेरे बिना पर यही है फिकर,
मेरी माता को होगा सबर ही नहीं ॥ २ ॥
हाय कब तक वो मेरे लिये रोयगी,
नीर नैनों बहा करके मुँह धोयगी।
उसके दिलको तसल्ली नहीं होयगी,
क्योंकि दूजा है कोई पिसर ही नहीं ॥ ३ ॥
मेरी माता को कैसे सबर आयगा,
हाल सुनते ही बस फट जिगर जायगा।
रूप कहिये उसे कौन समझायगा,
पास दुखिया के मेरे पिदर ही नहीं ॥ ४ ॥

२

भगवान भगत के वश में होते आये।
जब जब भीड़ पड़ी भक्तन पर,
गरुड़ छोड़ कर धाये ॥ टेक ॥
भगत ने जब डारा फन्दा, आप बने हरि नाई नन्दा,
प्रेम से चरण दबाये ॥ १ ॥
भेष पकड़ कर बंस पठारा, साधू बन के रावण मारा
राज विभीषण पाये ॥ २ ॥
गुरु भगत पै किरपा कीन्हीं, भागीरथ को गंगा दीन्हीं
स्वर्ग दिये पहुंचाये ॥ ३ ॥
द्रौपदी जब दुष्टों ने घेरी, राखो लाज करी ना देरी।
सभा में चीर बढ़ाये ॥ ३ ॥
दुर्योधन के मेवा त्यागे, भूख लगी तब उठके भागे।
साग बिदुर घर खाये ॥ ४ ॥
खम्भ चीर प्रहलाद उबार्‌यो, हिरणाकुश भी स्वर्ग सिधारा
नृसिंह रूप धराये ॥ ५ ॥

३

मेरी इमदाद को बांसुरी वाले आजा।
हाथ में अपने सुदर्शन को संभाले आजा ॥
खींचता चीर है बेदर्द दुशासन मेरा।
इसको नापाक इरादे से हटाले आजा ॥
आबरू लेने को आमादा है जालिम कौरव।
पड़ गए आह मुझे जान के लाले आजा ॥
बेनुमाई से सुदामा को बचाया है तूने।
मुझको इस जिल्लतोखारी से बचाले आजा।
आहो जारी में मेरी जान घुली जाती है।
कर रही हूं बड़ी देर से नाले आजा ॥
मिसले तसवीर है खामोश हुवा और भीष्म।
लग गये द्रोण के भी मुँह पै हैं ताले आजा ॥
भीमो सहदेव तो क्या चीज हैं अर्जुन तकने।
कर दिया है मुझे किस्मत के हवाले आजा ॥
लाज मुझ बेबसो बेकस की बचाने के लिये।
ये जमाने के जियालों के जियाले आजा ॥
कौन हमदर्द फलक तेरे सिवा ऐ मोहन।
आके इस कोहे गिरांबार को टाले आजा ॥

—:o:—

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥।
८.	सत्य शब्द संग्रह गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥।
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद् अंक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।